

॥ मन वृन्दावन ॥

लक्ष्मीनारायण लाल

जब कृष्ण नहीं रहे, तब से यह प्रणयकथा पुरु होती है । जब अकेली राधा ने एक दिन अपने उस वृन्दावन से यह कहा था कि जब वृन्दावन तू नहीं, मेरा मन है : इसके बाद से यह प्रेमकथा पुरु होती है ।

वह मथुरा, वह समूचा ब्रज — बरसाने से लेकर यमुना के कछारों तक, वृन्दावन से महारास भूमि तक, यहां तक वह पहली यात्रा की थी महात्मा बुद्ध ने, महासुन्दरी आम्रपाली के साथ । अपने परम अन्तरंग शिष्य आनन्द को भी यमुना के तट पर बुद्ध ने यह कहकर वहीं छोड़ दिया था कि यहां से आगे अब तुम मेरे साथ नहीं चलोगे । यहां से अब मैं अपने व्यक्ति-सत्य के दर्शन करूंगा । अकेले मैं इस सौन्दर्य के संग चलूंगा । हर सत्य परिवर्तनशील है — यह जो मैंने कहा था — इसे अब मैं जीकर देखना चाहूंगा । इस प्रेमभूमि पर तब बुद्ध आम्रपाली को संग लिये हुए चले थे ।

कदम्ब की छाव में तब बुद्ध बैठे थे । आम्रपाली उनके अंक में सिर रखकर सो गई थी । तब बुद्ध के मुख से निकला था — मथुरा ! मथुरा हैं मथुरा ।

फिर आये थे यहां अवन्तिपुत्र शूरसेन, अपनी महारानी सुदक्षिणा को संग लिये हुए । यहीं उस यक्षिणी से उनका वह महाप्रणय हुआ था, जिसकी स्मृति में उन्होंने इस ब्रजलोक को पहला जनपद बनाया था । अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, काषी, कोसल जनपद की तरह यह शूरसेन जनपद । फिर यहां की धूलि अपने मस्तक पर चढ़ाई थी मेगस्थनीज ने, हुएनसांग ने । और पुष्यमित्र के समय एक यूनानी महासुन्दरी क्लींसोवोरा भागकर यहां आयी थी । पुंग राजकुमार से बिना ब्याह के ही उसे पुत्र हुआ था — जिसका नाम पड़ा था भागवत ।

फिर षक । कुषाण । और तब कालिदास — 'यस्यावरोधस्तनचंदनाना' जब यहां से जल-विहार करते हैं और इनकी रानियों के स्तनों पर लगा हुआ चन्दन जल में मिलकर यमुना में बहने लगता है, उस समय मथुरा में भी यमुना का रंग ऐसा प्रतीत होता है, मानो वहीं पर उनका गंगाजी की लहरों से संगम हो गया हो । हे सुन्दरी, यहां प्रणय करके तुम कुबेर के चैत्ररथ नाम के उद्यान से भी बढ़कर सुन्दर वृन्दावन में कोमल पत्तों और फूलों की षय्याओं पर विहार करना ...

फिर यहां आये मौखरी, वर्धन, गुर्जर, मैत्रक, कलचुरी और प्रतिहार, और तब एक लुटेरा आया महमूद गजनबी । उसने एक सहस्र गौओं को काटकर उसी यमुना में डलवा दिया । तभी यमुना में एक कुम्हलाया हुआ कमल वहां बहता आया था और वे सारी गौएं सहसा जी गई थीं ।

फिर आये मंगोल, गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद, लोदी और मुगल ।

और ब्रज चौरासी कोस की यात्रा चलती रही ।

बहुत-बहुत बड़ी यात्रा !

बहुत-बहुत लोग इसमें !

झांझ, झालरी, रंगभीनी ग्वालिनें करना बाजत ताल-मृदंग और किन्नर की जोरी । प्रेमी, लुटेरे, पानी-पुष्यात्मा, वैष्णव-षाक्त, भोगी-अघोरी, वैरागी-त्यागी, नास्तिक-आस्तिक, व्यक्ति-निर्व्यक्ति, आत्म-परात्म !

और यह यात्रा नृत्यवत् मण्डलाकार अबाध गति से अब तक चल रही है — चलती जा रही है । और हर चरण से वही एक ही पगताल उठ रही है ।

तादीम-तादीम तत-तत थेई-थेई थुंगन-थुंगन तत-तत थेई-थेई !

फिर आया फिरंगी राजा — सर्जी अंजन गांव की सन्धि से । भरतपुर, अलवर, धौलपुर, करौली तथा ग्वालियर की चौहद्दी समाप्त हो गई । और तभी ब्रज की यात्रा में आया एक फ्रांसीसी — अपनी इटैलियन प्रेमिका गार्वा के संग । फिर

आये बिषप हैब्र, विक्टर जैकेमाण्ट और ग्राउन — पश्चिम से निराष यहां आध्यात्मिक षान्ति खोजने । तभी पड़ा ब्रज में अकाल । और तब आए यहां गांधी, सुभाष, अरविन्द, भगत, खुदीराम और मिस सेन । एक ओर चर्खा, दूसरी ओर बम ! जय भारत मां की !

सैंतालीस के बाद उस ब्रज-यात्रा में बहुत-बड़ी भीड़ थी । बम बनाते-फैंकते बहुतों के हाथ-पैर नष्ट थे । जेल की लम्बी यातना लोगों के मुखों पर थी । नास्तिकों और भूखों का लम्बा गिरोह ! स्वतंत्र भारत के कोने-कोने से न जाने कितने-कितने युवक-युवतियां सब ब्रज की वह लीला देखने आये थे ।

उन्हीं के बीच आवारा की तरह घूमता-घामता आया था एक पतित-राम । अवध के पास एक गांव का वह बुद्ध आदमी । जो पूरे ग्यारह वर्ष, तीन महीने, दो रोज, सात घड़ी बैरागी साधू रहने के बाद सब एकाएक त्याग देता है । केष मुंडा डालता है । साफी-लंगोटी चीर डालता है, कण्ठी-माला तोड़ देता है, कमण्डल पटक देता है और भगवान तथा गुरु को बेतरह गालियां देता हुआ सरजू की धार में कूद पड़ता है । नहाता है, नहाता रहता है । दोपहर से षाम तक उसी अथाह जल में । सरजू के कगार पर वैरागी साधुओं की भीड़ है । सबके हाथ में भाले, लाठी, चिमटा, बल्लम तने हैं । पतितराम अथाह जल में अट्टहास करके हँस पड़ता है । और फिर वह दम साधकर अथाह जल में अदृष्य हो जाता है । कगार पर प्रतिहिंसा के लिए खड़ी वह अपार भीड़ धीरे-धीरे छंट जाती है । पतितराम जल के बीचोंबीच सीधी धार में भीतर-ही-भीतर तैरता हुआ तीन मील पूरब बह जाता है ।

उतनी दूर जाकर जब वह उस सूने कगार पर उतराता है, तो वहां रात घिर आयी है । फ़ैजाबाद षहर के पास वह एक गांव है । वह थककर चूर-चूर हो गया । वह नंग-धड़ंग बालू की सेज पर सो जाता है '... बेहोष, अलमस्त ! जैसे, चौहद्दी मैदान मां रहा कबीरा सोय । उसे सिर्फ इतना पता है कि दो बार सियारों के झुण्ड ने उसे लाष समझकर उस पर अपने मुहं लगाये थे । दोनों बार तब उसे एक हल्की-सी हंसी आयी थी । उसने नींद के नषे में एक बार आंख खोलकर देखा था कि सियारों का वह पूरा गिरोह उसके चारों ओर एक परिधि में प्रतीक्षारत बैठा था ।

सुबह हुई । गांव के लोग घाट पर आते ही चिल्लाये — आदमी की लाष । फिर लाष पर गलियों की बौछार — इस साले को भी यहीं, इस गांव में ही बहकर आना था । ससुरे सियारों ने इसे पानी में से यहां खींचा होगा, मुला साले इसे खा नहीं पाये । अब ई ससुरे के लिए कफन ले आवो । गांव के लोगों, चन्दा करो '... । सिर से पांव तक उस पर कफन ओढ़ा दिया गया । अब सुबराती डोम आये तो इसे खींचकर सरजू में मुहबत्ती दे ।

चैब-बैसाख में उगकर चार घड़ी का सूर्य । बालू में गुनगुनाहट हुई । पतितराम की आंख खुली । कपड़े के भीतर से चुपचाप उसने सब कुछ देख-सुन लिया । समझ-बूझकर बिजली की तरह वह उठा और कमर में सारा का सारा कफन लपेटता हुआ पतितराम भाग निकला । पूरे दो कोस तक गांववालों ने भूंकते हुए कुत्तों सहित उसका पीछा किया, पर पतितराम सरजू के मांझे में जो गायब हुआ तो गायब ! एक जगह इतमीनान से खड़े होकर पतिराम ने अपने कफन के दो हिस्से किये । एक को बांधा कमर में — धोती के नाम पर । दूसरे को सिर पर । छककर पूरे पेट भर सरजू का मीठा जल पिया और वहां से वह चलने को हुआ । मांझे में झाऊ के जंगल से सियारों की तभी बाली गूंजी — हुआ हुआ हुक्का हुआ ।

पतितराम को हँसी आ गयी । उसी सुर-ताल में उसने उत्तर दिया :

हुआ हुआ हुक्का हुआ ।
 जो हुआ अच्छा हुआ ।
 आवो चलो चक्का हुआ ।

और पतितराम धीरे से समाज में घुस गया । इलाहाबाद में आकर उसने रिक्शा चलाया । पूरे दो साल तक वहां रहा । फिर तीन साल कानपुर में । वहीं पतितराम की भेंट होती है आगरा के धनी-मानी पुरुष प्रीतमदास से । प्रीतमदास के दाएँ अंग पर फालिज गिरी थी । दो साल पहले उसके बाएँ अंग पर इसकी पहली चोट हो चुकी थी । यह दूसरी थी । इसी के इलाज में वह एक बैद्य के पास कानपुर आया था । लंगड़-भंचगड़ युवक प्रीतमदास । साथ उसकी प्रेम-विवाहिता पत्नी सुगन । पतितराम इन्हीं की नौकरी-सेवा में आगरा आया था ।

ब्रज की इस चौरासी कोस की यात्रा में पतितराम इनके सामान की बहंगी ढोता हुआ आया था ।

बहुत बड़ी यात्रा थी वह । हजारों लोगों की अपार भीड़, अतुल जन-समूह । नर-नारी, युवक-बूढ़े, रोगी-अपाहिज, जोगियों और भोगियों का जत्था । कोई रोग-मुक्ति के लिए, कोई प्रेम-पूर्ति के लिए, कोई षान्ति की खोज में, कोई प्रेमपुष्टि के लिए । प्रेम, भोग, वैराग्य, लीला, उन्माद, बटमारी, चोरी-चण्डाली से लेकर राजनीति तक । तन्त्र, मन्त्र, समाधि, उच्चाटन, निरंकार, वैष्णव, राधास्वामी, चैतनिया, रूपगौड़ीय, निर्गुणिया, वैरागी, दुनियावी, सब एक साथ । हारे-थेक राजनीतिक, डाकू, चोर, सौदागर, राजकाजकर्मी, असफल-उदास बौद्धिक । कोढ़ी-अन्धे, लूले-लंगड़े, असाध्य रोगी, विषयी सब एक साथ । अथक अबाध यात्रा : तकतकतक झुनं झुनं जै जै कक्कू कान नकुंजप । गिड़निड़ ताता गिड़निड़ ताता थुंगा गिड़ता गदगिन थेई ।

त त त ता थेई
 त त त ता थेई
 त त त ता थेई

यात्रा में सारा हिन्दुस्तान एक संग डोल रहा है — उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम । आन्ध्र, केरल, मैसूर, कलकत्ता, दार्जिलिंग, जलपाइगुड़ी, चौबीस परगना, नदियां, झरिया, मिथिला, पटना, मुजफ्फरपुर, अवध, वाराणसी, प्रयाग, कानपुर, दिल्ली, जालन्धर, राजस्थान, गढ़वाल, कुमायूं, नागपुर, झांसी, विलासपुर, सौराष्ट्र, पूना, बज, आगरा और उसके पास का एक कस्बा — चेतलाष्यामगंज ।

नदिया जिला — नवद्वीप — चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि — यहीं की है वह हिरनमयी । अब वह हिरनमयी । हिरन दी से हिरन बरु । परिघर हावड़ा । पति षुभ्रांषु मुखोपाध्याय — कलकत्ता हाईकोर्ट में एडवोकेट ।

पति के संग इस ब्रज-यात्रा में आयी है वही श्रीमती मुखोपाध्याय — हिरनमयी ।

षुभ्रांषु के हाथ में एक पुस्तक है — 'हिस्ट्री एण्ड पीपुल' । वह यात्रा में चुपचाप चलते-चलते उसी पुस्तक को खोल लेता और पढ़ने लगता — विषाल कार्यक्षेत्र केवल महापुरुषों, महान व्यक्तियों के लिए ही नहीं खुला रहता, वह उन सभी के लिए खुला रहता है, जिनके पास देखने को आँखें, सुनने को कान और अपने पड़ोसियों से प्यार करने को हृदय है ।

हिरनमयी पति का इस तरह पढ़ना देख मुसकराकर रह जाती है — जैसे मां अपने षिषु की अबोधता पर मन-ही-मन विहंसती है ।

हिरनमयी यात्रा में चल रही है । वह चारों ओर मृगी की तरह आंखें उचेटे हुए देखती रहती । ब्रज की वह बंजर खादर भूमि, राजस्थान के भरतपुर-करौली की ओर बहकर आती हुई वह उज्ज्वल धूलि, उत्तर में धौलपुर का वह निरभ्र आकाष, मध्यभारत के मुरैना तथा भिण्ड की वह सिहरन भरी हवा, इटावा, मैनपुरी, एटा और अलीगढ़ की ओर से इधर आते हुए वे पावस ऋतु पक्षी । गुड़गांव और अलवर की ओर का भूरे-भूरे बादलों से भरा वह गहन आकाष । हिरनमयी निहारती रह जाती, वनयात्रा के बीच से उन कदम्ब, करील, पीलू, खिरनी, छोंकर, ढाक, बेल, बबूल वृक्षों को । करील-कुंजों के सामने वह अनायास रूक जाती और वह कुछ अनहद सुनने लगती :

कस्य	न	नयन	युगं	रति	संज्ञे
मज्जति		मनसिज		तरल	तरंगे
वर		रमणी		रमणे !

फिर वह अचरज से अराबली पर्वत की षिषुवत् शृंखलाओं को देखने लगती । देखते-देखते ही उस दिन भादों-सुदी का सूरज ढलने लग जाता, तब यात्रा के अगले जत्थे से श्रीमद्गोस्वामी श्री एक सौ आठ महाराज मथुरा की दूरगामी आवाज गूँज उठती - "श्री वृन्दावन-विहारी राधारमन श्री ब्रजरमणलाल जी की प्रेमाज्ञा सौ ब्रजवारेन की ब्रज चौरासी कोस की यात्रा की इत आजु पड़ाव ।" इसके बाद ही दूसरा स्वर सुनाई देता, "लेडीज अइण्ड जेण्टलमइन् ! नाऊ टूडेज होली ब्रज जरनी इस्टापेस हियार ' ' ' थैंकिइऊ !"

अंग्रेजी में यह उद्घोष करने वाले महानुभाव हैं - सर आर.बी.रेड । ये हैं श्रीमद् गोस्वामी जी के सुपुत्र । नाम है इनका राधाबल्लभ लाल । पर ये आर.बी. रेड के नाम से पुकारे-जाने-माने जाते हैं ।

बात यह हुई कि यहां उन्नीस सौ चालीस ईस्वी में अमरीका का एक दम्पति राधा के गांव बरसाना घूमने आया था । राधाबल्लभजी ही उनके पथप्रदर्शक और संगी थे । क्योंकि उस समय मथुरा-वृन्दावन के सारे गोस्वामियों और पण्डों में सिर्फ यही राधाबल्लभजी ही कुछ टूटी-फूटी अंग्रेजी बोल-सुन-समझ सकते थे ।

बरसाना में राधा-मन्दिर के बाहरी सहन में कृष्ण-गाथा को याद करते हुए जब मि० जैक्सन ने अपनी प्रिया डोरिथ के कंधे पर हाथ रखा और अपलक उसकी आंखों में आंखें डालकर देखने लगे तो घबराये हुए आर.बी. जाने क्या समझकर अंग्रेजी में बोल उठे, "साहब, मिस्टर साहब, लेट मी बन्द कर द डोर फर्स्ट !"

इंग्लैंड से जैक्सन के सहायक की एक चिट्ठी राधाबल्लभ के पास तब आयी थी । अंग्रेजी खत में आर.बी. के लिए स्वभावतः 'डियर सर' लिखा गया था । तब से राधाबल्लभ को बड़े गर्व से 'सर' का खिताब मिला हुआ है । उस खत को षीषे में मढ़ाकर वे अपने घर की तिजोरी में बन्द रखते हैं ।

दूसरे दिन वह यात्रा फिर शुरू होती है । आज आष्विन बदी द्वितीया है । सर आर.बी. रेड अपने पिता के उद्घोष के बाद फोरन अपना उद्घोष करते हैं, "हालो ! लेडीज अइण्ड जेण्टलमइन् ! टू डे इज पांच सितम्बर - अइण्ड होली ब्रज जरनी इसटारटेस फार टू डे । थैंकीइऊ !"

इस यात्रा में एक आया है, आगरा के पास के एक कस्बे चेतला - ष्यामगंज का ब्राह्मण पुरुष - सुबन्धु नाम है उसका । अवस्था यही चालीस के लगभग । वह यात्रा में श्रीमती सुगन दास के फालिज गिरे हुए लंगड़ाते पति श्री

प्रीतमदास के बाएँ-बाँए चलती है। दायीं ओर चुपचाप चल रही है वही सुगन । और पीछे-पीछे बहंगी में मालिक का यात्रा-सामान ढोता हुआ चल रहा है वही पतितराम ।

अजब यात्रा है यह !

अजब पर उतनी ही सहज !

दुर्गम, पावन, कठोर और निर्मम यात्रा ! हर प्रदेश, अंचल के लोगों का जत्था एक में चलता हुआ भी अलग है । संग, पर निस्संग । अलग पर साथ । और सब एक समूह । एक ही यात्रा सब की । अलग-अलग भाषा और बोली में वही कृष्ण-राधा के गीत गाये जा रहे हैं । कुछ मौन हैं, कुछ हँस-बोल रहे हैं । षेष गा-बजा रहे हैं । कुछ ऐसे हैं, जो यात्री नहीं, महज दषक हैं, महज स्रोता । संग-संग चलते हुए भी यात्री नहीं, पथभोक्ता, पथबन्धु नहीं । अनेक-अनेक चेहरे मुखौटों-जैसे लग रहे हैं वे । किसी पर भाव हैं, एक नहीं निन्यानबे भाव । किसी पर कोई भाव नहीं — जड़, मूर्तिवत्, षिला-खचिंत !

यात्रा चल रही है । चलती जा रही है । हिरनमयी के कण्ठ से सहज ही यह गान फुटता है :

के पतिया लुए जाएत रे !

मीरा प्रियतम पास

हिय नहिं सहए असह दुख रे भेल सावन मास

एकसरि भवन पिया बिन रे मोरा रहलो न जाय

सखि अनकर दुख दारून रे यस के पतिआय ।

सुबन्धु घूरकर अपने से दायीं ओर देखता है — एक तीखी गहन मर्मभेदी दृष्टि से, पर भीड़ में वह गाने वाली का मुंह नहीं देख पाता । तब वह एक भद्दी-सी गाली देता है । पर वह गान तब भी चल रहा है ! वह चिल्ला उठता है, “बन्द करो यह बेहूदा गीत ! आततायी कहीं की !” गान तब भी लहराता जा रहा है । राग और लय को अब अपनी धार मिल गयी है । सुबन्धु का मुख नफरत से भर गया है । वह घृणा से जमीन पर थूकता है । थूक छिटक कर पतितराम की टांग पर जाता है । पतितराम बस केवल मुसकराता है । कहता है वह, “यह नफरत किससे, किसलिए ? ”

सुगन सिर झुकाये यात्रा में चली जा रही है । उसका पति प्रीतमदास लड़खड़ा- लड़खड़ाकर चल रहा है । वह धीरे से पूछता है, “सुगन ... ओ सुगन ! इस यात्रा से मैं फिर अच्छा हो जाऊंगा न ! ”

सुगन धीरे से उत्तर देती है, “जी, हां ! ”

सुबन्धु एकटक सुगन को देख रहा है । उसी क्षण सुगन की आंखें उससे मिल जाती हैं । सुगन लड़खड़ाकर जैसे गिर जायेगी । पति पूछता है, “सुगन, तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न ? ”

सुगन संभाल लेती है अपने आप को । उसकी तबीयत बिलकुल ठीक है । “तुम इस तरह चुप क्यों हो, सुगन ? तुम भी कुछ गाओ न ! देखो, सब औरतें गा रही हैं ।”

सुगन सिर्फ नीचे देख रही है । बोलती है, “सब गायेंगे तो सुनेगा कौन ?”

“गीत क्या सुनाने के लिए गाया जाता है ? ”

सुगन चुप ।

पति कहता है, "गान तो सिर्फ अपने लिए होता है ।" सुगन को निरूत्तर देखकर झट सुबन्धु बोल उठता है, "अपने लिए जो होता है वह क्या कोई गा सकता है ? और वह कुछ नहीं होता । सब तरह का गाना अब तो रिकार्ड में बिकता है । उसे सिर्फ अब लेना होता है ।"

प्रीतमदास सुबन्धु का मुंह देखता है ।

सुबन्धु का मुंह टंडे लोहे की तरह है ।

प्रीतमदास पूछता है, "आखिर सुबन्धु, तुम इस यात्रा में क्यों आये ?"

"क्योंकि चला आया," वह उत्तर देता है ।

"क्यों नहीं कहीं और चले गये ?"

"हां, यह भी ठीक है । मैं कहीं जा सकता हूं । मुझे इस धर्म-कर्म से कुछ लेना-देना नहीं ।"

बहंगी ढोता हुआ पतितराम हँस पड़ता है । कहता है, "यह बाबूजी आजाद हैं – स्वतंत्र !"

पतितराम हँसने ही जा रहा था कि सुबन्धु ने क्रोध से उसकी ओर देखा । वह बेचारा सकुचा गया ।

भादों-सुदी ग्यारह को, जिस दिन से यह ब्रज-यात्रा शुरू हुई है, उस दिन यमुना के तट पर विश्रामघाट पर सब के सब यात्रियों ने वहां श्री महाप्रभु की सभा में, अंजुलि से जल लेकर व्रत लिया था – यात्रा के सारे व्रत-नियमों के पालन के लिए । छब्बीस दिन का पवित्र जीवन, अखण्ड ब्रह्मचर्य-पालन, सात्त्विक भोजक, निष्कपट जीवन, सत्य भाषण !

अकेला सुबन्धु उस व्रत-सभा में नहीं गया था । और सुबह प्रातः सात बजे जब यह अन्तर्गृही परिक्रमा शुरू हो रही थी, उस समय सुबन्धु घाट के पास एक होटल में बैठा षराब पी रहा था । तली हुई मछलियां और मांस खा रहा था । पूरे बन्द कमरे में सिगरेट का धुआं घुट रहा था ।

यहीं सुबन्धु जब बनारस-विश्वविद्यालय में पढ़ रहा था – एम.ए. के पहले साल तक, इसके सहपाठी इसे गोबरगणेश बन्धु के नाम से पुकारते थे ।

तब यह पिछले पांच वर्षों से बनारसवासी था भी । दषाष्वमेघ घाट के पास अपने बड़े भाई के साथ । उन्नीस सौ इकतालीस की बात है यह । सुबन्धु तब बनारस विश्वविद्यालय में एम.ए. का छात्र था । उनका अभिन्न सहपाठी दोस्त था राजकुमार यषोवर्मन । ब्राह्मण-वंश का यषोवर्मन – उत्तर भारत के रंगोली स्टेट का राजकुमार । उस समय यहां गदौलिया पर एक आलीषान हवेली लेकर, नौकर-चाकर, रसोइया, षोफर, कोचवान, माली आदि के संग रहता था । विश्वविद्यालय वह कभी कार से जाता या कभी बग्घी से । सुबन्धु सदा परछाई की तरह उसके साथ होता था ।

उस समय प्रसिद्ध चित्रकार श्री षारदाचरण उकील भेलपुर वाटर वर्क्स के पीछे रहते थे । राजकुमार वहीं उनसे चित्रकला सीखने जाता था । उन दिनों उस्ताद अलाउद्दीन खां भी विजयनगर की कोठी में रहते थे । यहां यषोवर्मन उनसे सितार सीख रहा था । सौन्दर्यबोध से भरा सारा व्यक्तित्व । अपने गुणों और मूल्यों के नाते सारे विश्वविद्यालय में उस समय उल्लेखनीय श्रद्धापात्र । ये सब बहुत पहले की बातें तो नहीं हैं । लेकिन आज लग रहा है, ये बहुत-बहुत पहले की बातें हैं । इतिहास इतनी तेजी से निकल जाता है कि उसके जयरथ की धूल में बातें किस तरह धूमिल हो जाती हैं !

उन्नीस सौ बयालीस की वह वर्ष ! सारे देश भर में जो कुछ उस समय घट रहा था — उस बनारस विश्वविद्यालय में ही जो कुछ हो रहा था, उस सबको बताना आज असम्भव—सा लग रहा है ।

किन्तु उस समय वहां जो सबसे बड़ी घटना घटी थी, उसे बताना आज बहुत जरूरी है ।

सात जुलाई को यूनिवर्सिटी खुली थी । दस जुलाई को राजकुमार यशोवर्मन अकेला अपनी कक्षा में पढ़ने गया था । उस दिन सुबन्धु नहीं आया था । शाम को उस दिन यशोवर्मन अपनी कोठी में जाकर जैसे कोई महत चोट खाकर बेसुध हो गया हो । सुबन्धु दौड़ा आया । राजकुमार की आंखों में आंसू, सारे शरीर में कम्पन !

यशोवर्मन ने सुबन्धु से बताया, “एक बड़ी गम्भीर बात ” अपने ही विभाग में न जाने कहां से कैसे एक लड़की पढ़ने आयी है । अब मैं वहां कल से पढ़ने नहीं जा सकूंगा । दोस्त, अब मेरी पढ़ाई खत्म ! मुझे अपने राज्य को चुपचाप वापस लौट जाना होगा ।”

सुबन्धु के बहुत समझाने पर, किसी तरह यशोवर्मन फिर दूसरे दिन अपनी कक्षा में गया । वहां सुबन्धु ने जो देखा, वह सत्य ही था । इतने गम्भीर, सुन्दर, कलाप्रेमी, यशोवर्मन के हृदय में जो सहसा इस तरह विंधकर आरपार हुआ था, वह सच अद्भुत था । वह उतनी ही गम्भीर लड़की, शान्त, भरे हुए सागर—जैसा यौवन । वंक ग्रीवा, झुका माथा । किसी की भी ओर नहीं देखना — जैसे आत्मतुष्ट, परितुष्ट, सम्पूर्ण ! सिर्फ कल — जीवन में पहली बार कल, न जाने कैसे, क्यों सहज ही वे गम्भीर आंखें अकस्मात् उसी एक यशोवर्मन की ओर उठ गयी थीं । राजकुमार को तब लगा था, जैसे उसकी आंखों में बाहर से भीतर उसके सारे आकाश में, धरती पर षट-षट चांद—सूरज एक साथ उग आये हों । उस एक क्षण में एक पूरा मन्वन्तर । एक समूचा युग उसी एक छन में ।

तब प्राणप्रिय सुबन्धु ही दूत बना अपने दोस्त का । मध्यस्थ । माध्यम । महाराजकुमार की चिट्ठियां ले जाकर उसे देता । उसके प्रणयसंवाद पहुंचाता । उसकी कुशल—क्षेम पूछता । वही अपने दोस्त की ओर से गर्ल्स होस्टल के दरवाजे पर खड़ा रहता ।

पर यशोवर्मन की चिट्ठियों का कोई जवाब नहीं !

सवालोंने, प्रस्तावों, निवेदनों का कोई उत्तर नहीं ।

एक दिन बड़े जतन से सुबन्धु ने दोनों को आमने—सामने ला खड़ा किया । स्वयं पीछे जा खड़ा हुआ ।

सुबन्धु को याद है, दोनों बड़ी देर तक चुपचाप माथा झुकाये उसी तरह खड़े रहे ।

“आप कहां की हैं ? कहां से आयी हैं ?”

“बंगाल ” !”

“ और आप ? ”

“उत्तर भारत की रंगोली स्टेट ! आपने मेरी किसी भी चिट्ठी का जवाब क्यों नहीं दिया ?”

वह चुप । मौन । यशोवर्मन ने सहज ही उसके बाएं कंधे पर अपना दायां हाथ रख दिया ।

वह तड़प उठी, “नहीं—नहीं ! ऐसा नहीं । ऐसा नहीं हो सकता ! ” और वह भाग गयी । भागती चली गयी ।

यशोवर्मन की ओर से सुबन्धु उससे प्रायः रोज ही मिलता । पर पढ़ने—लिखने के अलावा और कोई भी बात नहीं हो पाती ।

एक दिन उसने सुबन्धु को बताया – वह क्यों कलकत्ता छोड़कर इतनी दूर बनारस आयी है !

जिला नदिया, नवद्वीप को छोड़कर दस वर्ष की अवस्था में ही वह अपने मामा के यहां कलकत्ता में आयी थी । वहीं हाई स्कूल । वहीं से अंग्रेजी में बी.ए. ऑनर्स । वैष्णव भूमि – घर की लड़की – जिसके संस्कार में सिर्फ प्रेम–ही–प्रेम था – यहां कलकत्ता में उसने जाना – उसके सग चाचा उससे प्रेम कर रहे थे । विवाहित, बाल–बच्चेदार चाचा । और एक दिन उन्हीं चाचा ने उससे विवाह का प्रस्ताव भी कर डाला । उसने देखा – यह है प्रेम । वह सिर से पांव तक कांप गयी । चाचा उसके सामने बैठे घंटों रोया करते थे । वह भागती थी, छिपती थी – चाचा उतना ही अधिक उसका पीछा करते थे । चाचा का वह दयनीय मुख – वह अपना मुंह पीटने लगती थी । और उसे उस चाचा का वह मुख उतना ही याद आने लगा था । तभी वह कलकत्ता से भागी थी ‘‘ इतनी दूर बनारस । प्रेम से क्षुब्ध, भयभीत ‘‘

वह यहां बनारस पढ़ने आयी थी । साथ ही कलकत्ता को भूलने । जमींदार वैष्णव पिता की अकेली लड़की । माथे पर अपनी जन्मभूमि और माता–पिता की मर्यादा और दायित्व लिये हुए ।

पर यह क्या हो गया ! उसने एक नहीं, न जाने कितनी बार राजकुमार से साफ कहा था कि वह प्रेम नहीं करती । वह यहां विद्या के अलावा और कुछ लेने–देने नहीं आयी है । पर न जाने क्या हो गया था ! राजकुमार आये–दिन उसके लिए कितनी–कितनी कीमती चीजें, वस्तुएं प्रेमोपहार में देता था । पर वह बस सुबन्धु के हाथ वह सब–कुछ चुपचाप लौटा देती थी । राजकुमार उसे कार पर बिठाकर कितनी–कितनी दूर ले जाता – टांडाफाल, विन्धम, सिरसी, रामनगर और सारनाथ, पर वह कहीं कुछ नहीं बोलती थी । राजकुमार उसके लिए अपनी हवेली में बड़ी–से–बड़ी नर्तकियों, वादकों और गायकों की महफिलें लगवाता, प्रीतिभोज देता, पर वह सिर्फ मूर्तिवत् देखती रह जाती । भरी गंगा में नावों को फूलों और दीपकों से सजवाता – एक नाव नहीं, बीसों नाव – और फिर आधी रात तक उसी गंगा में मल्लाहों के बोल गूंजते रहते – “लहासी काट दे ! काट दे धारा ! काट दे लहासी जवान !” पर वह वहां उपस्थित रहकर भी, दूर बहुत दूर भागती रहती । सब कुछ देखती हुई भी कुछ भी नहीं देखना चाहती थी । दूर, बहुत दूर एक भयानक ठंडा संघर्ष ।

सुबन्धु ही केवल दुनिया में एक साक्षी है – वह राजकुमार से जितना दूर भागना चाह रही थी, न जाने कैसे उतना ही पास आ रही थी ! वह जितना संघर्ष कर रही थी – वह कण–कण प्रतिक्षण उतनी ही पराजित होती गयी थी ।

मध्यस्थ सुबन्धु ! चुपचाप खड़ा सब देख रहा था । वह पूरा वर्ष समाप्त हो रहा था । परीक्षा के दिन निकट थे । एक दिन वह हिरनमयी प्रातःकाल होस्टल से पैदल चलकर गली–गली पार करती हुई, सुबन्धु के घर का पता पूछती–पूछती उसके पास पहुंच गयी । अभी दिन नहीं निकला था । सुबन्धु खुली छत पर पड़ा सो रहा था । उसने मां की तरह सुबन्धु को उठा लिया ! “चलो, उठो, मेरे राजकुमार के पास चलो । तुम्हीं दूत थे, तुम्हीं मुझे उसके पास ले चलो ।”

मैं समर्पित हूँ आज !

मेरे राजकुमार !

लो, चाहे जो करो मेरा !

उसी पूजा की मनःस्थिति में, उसी राग–उल्लास में वह राजकुमार के पास आयी थी । राजकुमार खड़ा था अपने कमरे में । वह केले के सद्य–उदित महापुष्प–सी उसके पैरों पर बिछ गयी ।

राजकुमार ने उसे अंक में भर लिया और फिर मूर्तिवत् वहीं खड़ा रह गया । बेला, चमेली, रजनीगन्धा के सारे पुष्प उसके पांवों में बिछे रह गये । वह विद्यापति का गीत गाती हुई चली गयी :

सुन्दरि चललिह पहुधर ना
चहुँ दिस सखि सबकर घर ना ।
जाइइत लागु परम डर ना
जइसे ससि कौप राहु डर ना ।

दूसरे दिन सुबन्धु ने देखा, राजकुमार वहां से गायब । हवेली में ताला लटक रहा है । नौकर-चाकर, मोटर-बग्घी सब अदृष्य ! सुबन्धु आश्चर्यचकित रह गया । रातोंरात यह क्या हो गया ! यषोवर्मन की प्रिया पागल-सी हो गयी । वह सुबन्धु के सामने फूट-फूटकर रोने लगी ।

सुबन्धु उसे अपने संग लिये हुए अपर इंडिया ऐक्सप्रेस से रोहिल स्टेशन पर उतरा । वहां से रंगोली स्टेट चौदह मील दूर । शाम का वक्त, कोई सवारी नहीं । दोनों पैदल चले । चार मील के बाद उन्हें एक बैलगाड़ी मिली । और आधी रात के समय दोनों रंगोली पहुंचे । पूरे एक मील में वह विषाल राजभवन । चारों ओर सन्नाटा ।

बाहरी मुख्य द्वार पर तीन सिपाही पहरे पर थे ।

सुबन्धु को सिपाही ने बताया कि राजकुमार भीतर राजभवन में हैं और सुबह से पहले उनसे किसी भी तरह मिलना असम्भव है ।

वहीं पता चल गया, राजकुमार विवाहिता हैं ।

सुबन्धु की आंखें वहीं धरती पर गड़ गयीं ।

बड़ी देर बाद उसने बायीं ओर देखा — केले के गाछ की तरह हिरन चुपचाप खड़ी थी । केले के उस गाछ पर चांदनी बरस रही है । उसके बड़े-बड़े पात रह-रहकर कांप उठते हैं । उस गाछ में से अभी-अभी उगा हुआ वह महापुष्प षील के अदृष्य भार से झुक गया है । उसमें से एक सुगन्ध फूटी । सुबन्धु वहीं जमीन पर लड़खड़ाकर बैठ गया ।

बहुत ज्यादा-से तारे उत्तर दिशा के आकाश में सिमटकर झुक आये थे ।

2

जमुना के विश्राम घाट से यह यात्रा पुरु होती है । पहली यात्रा है, मथुरा से मधुवन । यह यात्रा चौरासी कोस की है । कुल दिन छब्बीस हैं । मथुरा से मथुरा तक । जमुना के विश्राम घाट से विश्राम घाट तक । बीच में है जतीपुरा, कामवन, बरसाना, नन्दगांव, वृन्दावन, गोकुल और ...

यात्रा सचमुच बड़ी है । पर उससे भी बड़े आदमी हैं, जो चल रहे हैं ।

पहली यात्रा !

मथुरा से मधुवन !

दाएं-बाएं पुलिस चल रही है । साथ ही पी.ए.सी. बटालियन । और साथ-साथ चल रहा है मथुरा का वाटरवर्क्स विभाग, अस्पताल, डाकखाना, भोजनालय, तम्बू, कनात, छोलदारी, राषन, भोजन-भंडार, साग, दूध-सब्जी, सब कुछ मधुवन में पहले ही पहुंच गया है ।

भादों बीत रहा है । आज ही ष्णायद उसका अंतिम दिन है । नहीं-नहीं, भूल हो रही है । अभी तीन दिन हैं भादों में । भादों बीतेगा यात्रा के तीसरे पड़ाव पर सान्तन कुण्ड पर, जहां कृष्ण ने कंस द्वारा पठाये सात राक्षसों को मारा था — और वहां के कुण्ड में षान्ति-स्नान किया था ।

यात्रियों की अपार भीड़ मथुरा शहर से बाहर निकलकर मधुवन की यात्रा में चल रही है । यात्रा कठिन है । यात्रा सुलभ है । कठिन है यात्रा उसके लिए जो स्वयं अस्वस्थ है और उसके संग एक पैदल चलता हुआ बालक भी है । ऐसी कठिन यात्रा है एक जैजैवन्ती की — एक विधवा ब्राह्मणी, जिसके संग एक छह वर्ष का बालक है । राहुल जिसका नाम है । राहुल पैदल नहीं चल पा रहा है । रो रहा है मां का हाथ पकड़े । मां स्वयं अस्वस्थ है । उसे बुखार है । पर वह किसी को बता नहीं सकती । साथ चलता हुआ अस्पताल-दवाखाना अधर्म है, जैजैवन्ती के लिए । वह दवा खायेगी तो यात्रा की मर्यादा टूटेगी । उसका नियम-व्रत जायेगा । वह राहुल को खींचती हुई आगे बढ़ रही है । राहुल मां की गोद में चढ़कर जाना चाहता है । मां उसे गोद नहीं ले पा रही है । असम्भव हो रहा है, उसके लिए । मां उसे झिड़कती है । उसके मुंह पर चांटा भी मार देती है । फिर बेतरह पछताती भी है ।

पास में ही चलता हुआ पतितराम यह सब देख रहा है । बहुत, बहुत कुछ देख रहा है वह आज । वर्तमान से आर-पार वह बहुत पीछे देख रहा है । अपना वह गरीब गांव '.....' कुम्हारों की बस्ती । वह बारह साल का था तब । कुछ दे-दिलाकर उसकी मां ने तब उसकी षादी तय की थी । घर-परिवार में सिर्फ एक वक्त भोजन । वह भी भरपेट नहीं । उन्हीं दिनों गांव में अयोध्या के एक बैरागी गुरु महाराज आये थे । पतितू तब मिडिल स्कूल के दर्जा सात में पढ़ रहा था । उसने हाथ जोड़कर गुरु महाराज से पूछा था, "अगर ईश्वर है, धर्म है, तो हमें कम-से-कम दोनों वक्त भोजन, तन ढँकरने का कपड़ा क्यों नहीं मिलता ? "

गुरु महाराज ने तब पतितू को समझाया था, "सुन रे बचवा, ई सब इसलिए है कि तू इस जगत को सच मानता है । यह सब सच कहां है ? यह सब तो माया है माया ! "

"और स्त्री महाराज ?"

" अरे, अरे ! वह तो महाठगिनी है रे ! '.....' सत्य केवल वैराग्य है । "

गरीब को त्याग और वैराग्य सब से अधिक अपनी ओर खींचता है । पतितराम आज बहंगी ढोता हुआ यह सोच रहा है । वह सबको झट माया मानकर उस पर पूरा विष्वास कर लेता है । और कोई रास्ता भी तो नहीं है उसके लिए, यही एक सरल रास्ता है । संसार असार, पतितू तभी वैरागी हुआ था । चुपके से गांव छोड़कर । सबको माया मानकर अपनी अनदेखी दुल्हन को ठगिनिया सोचकर ।

यात्री गाते-बजाते नाचते-कूदते, मधुवन की ओर बढ़ रहे हैं । जैजैवन्ती बुखार में धुत्त किसी तरह अपने कदम बढ़ा रही है । राहुल मचल-मचल कर जमीन पर बैठ जाता है । धूल में लेट जाता है और बेतरह चीखता है । आसपास के

सारे यात्री काफी उपेक्षा, कटुता और अधर्म भाव से यह सब देखकर आंख बचा जाते हैं । क्रोध दिखाकर आगे बढ़ जाते हैं ।

रोते हुए राहुल को छोड़कर मारे गुस्से के मां आगे बढ़ जाती है । पतितराम बढ़कर बच्चे को उठाता है और दूसरे कंधे पर उसे बठा लेता है ।

यात्रा चल रही है ।

मधुवन अभी दूर है ।

पतितराम को लग रहा है, जैसे उसके कंधे पर किसी ने गेंदे का फूल रख दिया है। और उसकी सुगन्धि उसे पोर-पोर बांध रही है ।

दाएँ कंधे पर बहंगी । बाएँ पर वह षिषु । पतितराम बाएँ हाथ से षिषु के कोमल पैरों को बड़े हल्के से छूता है — दबाता है और उसके धूल-सने, थके पांवों को अपने होंठों से चूम लता है ।

कन्धे पर मजे से चढ़ा हुआ वह षिषु किलकारी मारता हुआ अपनी मां को पुकारता है । मां उसे वहां देखकर चुप रह जाती है ।

मधुवन अब समीप आ रहा है । वह दिख रहा है मधुवन ! वह देखो वह ! लोग एड़ी उठा-उठाकर देख रहे हैं । वह है मधुवन ।

सौराष्ट्र से आए हुए उस पुरुष के दोनों पांव जांघ से जुड़े हैं जन्म-जात । वह दोनों हाथों में लकड़ी का थपना लिये हुए उसी के सहारे घुटरूंच चलता है । घुटनों में चमड़ा बांधे हुए । नाम है लुंजू पटेल । वह भी उठकर औरों की तरह यहीं से मधुवन निहारना चाहता है । पर उसके तो पांव ही नहीं हैं । उसके साथ चल रही है राधाबाई, मारवाड़ की सत्तर साल की बुढ़िया — छोटी-सी लाठी के सहारे ।

वह पूछती है, "मधुवन की लीला ?"

लुंजू पटेल जमीन पर घिसटता हुआ बताता है, "तब गोपियों को छोड़कर कृष्ण मधुवन चले आये थे । गोपियां विरह में जलती हुई मधुवन को सन्देश भेजती थीं, कि कृष्ण, तुम कब हमारे पास लौटकर आओगे ? कृष्ण का कोई उत्तर नहीं आता था । तभी सूरदास ने गाया है —

"मधुवन कूप भरे सनेसन

मधुवन कूप भरे !

अर्धमास तुम आवन बदि गये सो दिन जात टरे

सनेसन मधुवन कूप भरे

लुंजू पटेल गाने लगता है । राधाबाई की आंखों से आंसू झरने लगते हैं ।

आ गया मधुवन !

पहली यात्रा खत्म हुई ।

पतितराम ने अपने कन्धे पर से षिषु को नीचे उतारा । उसकी मां सामने माथा थामे बैठ गयी थी । बुखार तेज है । पतितराम यात्रा के प्रधान संचालक श्री गोस्वामी जी का खबर देता है :

“स्त्री-यात्री, नम्बर दस हजार पांच, को सख्त बुखार है । ”

“तुम्हारा नम्बर ? नाम ?”

“मैं यात्री नहीं, नौकर मजदूर हूँ – यात्री नम्बर आठ सौ पचहत्तर और छियत्तर का । मेरा नाम पतितराम ।”

“ठीक ! अभी डाक्टर आते हैं । ”

अस्पताल के तम्बू में सारा इन्तजाम ठीक है । डाक्टर साहब जैजैवंती को देखते हैं, “एनफ्लूएंजा – छूत की बीमारी ! इसे सबसे अलग ‘इमरजेंसी’ वार्ड में रखना होगा । इसके बच्चे को अलग हटाओ, हटाओ !”

पतितराम बढ़कर बच्चे को अपने अंक में उठा लेता है । यात्री नम्बर दस हजार पांच साफ जवाब देती है, “वह डाक्टरी दवाई नहीं खायेगी । वह धर्म-यात्रा करने आयी है ।”

“जिद्दी, बेवकूफ औरत !” डाक्टर उसे डांटकर चले जाते हैं, “मरने दो . . . ”

वह सबसे अलग वार्ड में रख दी जाती है । खाट पर पड़ते ही वह बेहोष सो जाती है ।

राहुल पतितराम की गोद में है । चाय की दुकान पर ले जाकर पतितराम उस भूखे शिशु को दूध पिलाता है । बिस्कुल खरीदकर देता है ।

“और खाओगे ?”

बच्चा मजे से सिर हिलाता है ।

अपनी मालकिन सुगनदास के चौके में से थोड़ा-सा चावल-दाल लेकर पतितराम शिशु को खिलाता है । सन्तुष्ट शिशु को अंक में लिये हुए वह उसकी मां की ओर जाने लगता है । बच्चे को अब नींद आने लगी है । मां के तम्बू से बाहर वह अपनी चादर बिछाकर बच्चे को वहीं सुला देता है । फिर धीरे-धीरे वह तम्बू के भीतर जाता है । मां दर्द से कराह रही है । इतना तेज बुखार ! शरीर-माथे में इतनी पीड़ा ! ऊपर से कोई दवा नहीं लेगी, यह जिद्दी अन्धविश्वासी औरत ।

पतितराम सीधे प्रधान गोस्वामी के तम्बू में घुस जाता है । सबकी आंख बचाकर वहां से तेल की षीषी उड़ा लेता है । सूंघता है – कोई बढ़िया ठण्डा तेल है । धीरे से जैजैवंती के तम्बू में जाता है । हथेली में तेल लेकर उसके जलते माथे पर रखता है और उसका सिर दबाने लगता है । तेल सूख जाता है । फिर उतना ही तेल रखता है । दबाता है । शिशु की मां का कराहना षान्त हो जाता है । फिर वह पायताने जाता है और उसके पैर दबाने लगता है ।

उधर मधुवन में मधुवन की रास-लीला हो रही है । एक नहीं, कई रासलीलाएं – कृष्ण और राधा की महादेव लीला । जयति श्री राधाबल्लभो । मृदंग पर ताल दिया जा रहा है । सुरबीन पर सुर उभर रहा है । झांझ, करताल और बांसुरी पर गायन छा रहा है । राग पीलू है ।

आज श्री गोकुल में बजत वधावरा री !

पशुपति नन्दलाल पायौ, कंसराज ब्याल पायौ, गोपिन ने ग्वाल पायौ मधुवन श्रृंगार री !

सब सखियां गा रही थीं । तभी उस बीच समाजी की आवाज उभरती है ।

आयो एक बघम्बर ओढ़े, करत नगर में फेरा ;

षीष जटा तन भसम रमाये, रावल माहि दरेरा ।

महादेव जी आते हैं । यषोदा को प्रणाम करते हैं । कहते हैं, “अरी माता, हम तो तेरे लाल के दर्शन करिबे कू कैलास सों आये हैं ।” यषोदा हाथ जोड़कर उत्तर देती है, “सुत न दिखै हों तुमकों रावलि, बालक जात डराया ।” बड़ी मुष्किल की बात । यषोदा पुत्र नहीं दिखाना चाहती । महादेव जी उसी हठ में वहां धूनी रमाये बैठे हैं । अन्त में यषोदा जी कृष्ण का दर्शन कराती हैं और वही महादेव फिर राधा के घर जाते हैं ।

पतितराम जैजैवन्ती का पैर पकड़े हुए वहीं से रासलीला देख रहा है । जैजैवन्ती को थोड़ी देर बाद उल्टी होती है । पतितराम संभालता है । मुंह धोता है । पानी पिलाता है । जमीन साफ करता है और फिर वहीं से रासलीला देखने लग जाता है । महादेव जी किस तरह षिषु राधा के पैरों को अपने माथे से लगाते हैं ।

पतितराम अपलक सब देख रहा है, सोच रहा है — क्या है यह लीला ! यह जीवन माया तो नहीं है ! सच है, बिलकुल सच ! पर यह लीला क्या है ? कृष्ण, राधा, महादेव, यह मधुवन ... क्या है यह सब ! किससे जाकर वह इसका अर्थ पूछे !

क्या यही तो लीला नहीं, कि यह दुनिया एक संयोग है । सब संयोग ! कहां की यह जैजैवन्ती, कहां का यह पतितराम, कहां का वह अबोध षिषु , जो अकस्मात् उसके कन्धे पर चढ़ गया । कैसी यात्रा है यह मानुख की ! कैसा-कैसा मोह ! कैसी-कैसी भूख ! सब का उत्तर यह मानुख कब पायेगा ! कौन देगा उसे उसका उत्तर !

पतितराम पहले घर से भागा । फिर वह वैराग से भागा । जीवन से भागकर वह फिर इसी जीवन में आ गया । गरीब कुम्हार तब भी था वह, वही अब भी है वह । वहां रहता तो वह मिट्टी के बर्तन ही बनाता, खिलौने रचता ... कुछ तो बनाता । यहां क्या बना रहा है वह ! यहां तो वह ढो रहा है । जिस धर्म को अन्धविश्वास अनुभव कर उसने उसे उतार फेंका — वही धर्म तो अपने कपड़े-लत्ते, पोथी-पुस्तक, बर्तन-भाड़े, सीधा-बाधी के रूप में उसके कन्धों से झूल रहा है । यह क्या ढो रहा है वह ... अपना भी नहीं, किसी दूसरे का ।

उसी समय बाहर बच्चे की आवाज सुनायी दी । वह भागकर पहुंचा । बच्चा रो रहा था । उसके नीचे की चद्दर भीग गयी है । पतितराम सूखी चद्दर पर उसे लिटा देता है और स्वयं उस गीली चद्दर की ओर लेट जाता है ।

रासलीला समाप्त हो गयी है । आधी रात होने को है । सब रासलीला देखने गये थे । सुबन्धु नहीं गया था । सुगन अपने पति प्रीतमदास को संभालते हुए आयी । सुगन ने पूछा, “तुम सोये नहीं, सुबन्धु ?”

सुबन्धु चुप था ।

सुगन ने फिर पूछा, “तुम्हें नींद नहीं आयी ?”

सुबन्धु ने गाली दी, “ये रासलीला वाले ...”

सुबन्धु उठकर बैठ गया । सुगन ने उसे टंडा पानी पिलाया । तभी सुबन्धु देखता है — अकेली एक औरत रोषनी में जैसे नहाती हुई उसके सामने से चली आ रही है । माथा झुकाये चौड़े चटक किनारे वाली षान्तिपुरी साड़ी में । वह जैसे-जैसे उसके समीप चली आ रही है, सुबन्धु को लग रहा है एक काला-मोटा पर्दा उसके सामने से फटता जा रहा है — फटता जा रहा है । वही बंकग्रीवा ... वही मुख ... वही तन ... वही मुद्रा ... वही तोषा ...

सुबन्धु एकाएक उठ खड़ा हुआ ।

“कौन ? ”

स्त्री रूकी । देखा ... देखती रह गयी और संभलकर झट आगे बढ़ गयी ।

सुबन्धु देखता रह गया । उसके चारों ओर तार-तार हुआ वही काला पर्दा बेतरह कांपने लगा है । पर्दे के सुराख में से कितनी तेज रोषनी आने लगी है । सुबन्धु आंखें मूंद लेता है । पर उसे लगता है, उसके सीने में दोनों ओर आंख उग आयी हैं । वह उन आंखों को भी मूंद लेने के लिए झट वहीं बैठ जाता है ... पर उसे दिखता है : अब उसकी हथेलियों में दो और आंखें खुल आयी हैं ।

सुबन्धु संभलकर चुपचाप वहां से जाने की तैयारी करने लगा । सुगन बेचारी कुछ समझ न पायी ।

पूछा, “ यह क्या है ? ”

“यहां से जा रहा हूं । ”

“आखिर क्यों ?”

“क्योंकि इस यात्रा में नहीं जाना है मुझे ?”

“आखिर बात क्या हो गयी ?”

“ जो हो जाता है, वह इस तरह बताया नहीं जा सकता । ”

सुबन्धु जाने लगा । सुगन उसके सामने खड़ी हो गयी । बोली, “एक औरत को महज देखकर इस तरह भाग रहे हो । एक औरत मैं भी हूं, जो तुम्हारे सामने खड़ी हूं । अगर तुम्हें जाना ही है, तो तुम मेरी लाश पर से जाओगे ।”

सुबन्धु ने डांटा, “पागल, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?”

“तुम जा नहीं सकते ! तुम्हें यहां मैं ले आयी हूं । यहां से जब मैं जाऊंगी, तभी तुम जा सकोगे । मैं राधा नहीं हूं, मैं हूं रूक्मिणी ।”

... यह कहकर सुगन हँस पड़ी ।

राधा और रूक्मिणी ।

सुबन्धु का मुंह तिक्त हो गया । राधा और रूक्मिणी ... एक अजीब कल्पना ! एक रची हुई कथा । प्रेम-गाथा । एक विषेय समाज, परिस्थिति में गढ़ी और सोची हुई । तब से आज दुनिया बिलकुल बदली है । और यह हर क्षण बदलती जा रही है । यह वर्तमान सुगन बिल्कुल प्रत्यक्ष और यथार्थ यह राधा और रूक्मिणी के सत्य में कैसे अपने को सोच रही है । सुबन्धु ने एकटक सुगन को देखा । वह अब तक सामने तनी हुई मुसकरा रही है ।

सुगन ने उसके जड़ मौन पर फिर आघात किया, “तुम तो कहते थे कि तुम बिलकुल निर्भय हो ! स्वतन्त्र हो ! ”

सुबन्धु अब तक चुप था । और देख रहा था, जिस सुगन को वह अब तक एक साधारण औरत समझता था — वह किसी तरह से भी साधारण नहीं !

“क्या सोच रहे हो ? ” सुगन ने वरबस उसे वहीं बैठा लिया ।

“बोलो न, क्या सो रहे हो ?”

“औरत कभी साधारण नहीं होती !”

“बस ?”

दोनों काफी देर तक चुप बैठे रहे । सुगन ने पूछा, “यह कौन औरत थी ?”

सुबन्धु साफ झूठ बोल गया, “बस एक औरत थी ; पहले की कोई जान-पहचान नहीं ।”

“पर तुम और वह इस तरह खड़े देखते क्या रह गये ?”

“जैसे अपरिचित स्त्री-पुरुष एकाएक एक-दूसरे को देखते हैं और एक क्षण देखते रह जाते हैं, फिर दूर ... अदृश्य !”

“पर तुम झट इसके बाद ही यहां से इस तरह भाग क्यों रहे थे ?”

“सबका उत्तर देना होगा क्या ?”

“नहीं, सिर्फ इसी प्रश्न का, बस !”

सुबन्धु कई क्षणों तक चुप था । उत्तर देने के लिए उसके होठों पर कुछ कांपता, पर भीतर से कुछ फूटता ही न था ।

सुबन्धु बोला, “मेरी एक बात मानोगी ?”

“एक क्या, सब मानूंगी ... बोलो !”

“अपने इस प्रश्न का उत्तर तुम उस स्त्री से मांगकर देखना !”

“पर वह तो अपरिचित है – तुमने अभी बताया ।”

“देखो, अपरिचित का भी क्या उत्तर होता है ।”

प्रीतमदास की पुकार आयी । सुगन बड़ी तेजी से सुबन्धु का हाथ दबाकर चली गयी ।

सुबन्धु जैसे अकेला हुआ, उसे लगा, उसके चारों ओर दहकती हुई आग की एक रेखा जल गई हो । जलाने वाली वही औरत है । लड़की नहीं, औरत । क्या यह सच वही हिरनमयी ही है । नहीं, हिरन जिसकी आंखें हरे जंगल में आग लगा देती है । जलता हुआ जंगल सहसा बुझ जाता है । जला हुआ जंगल फिर लहराने लगता है । हिरन ... हिरन ... हिरन ... ! निर्मम नियति ! यह कैसा संयोग ! नहीं-नहीं ... ऐसा नहीं हो सकता !

उसी क्षण पास वहीं षिविर से एक गान थरथराने लगा :

मरन रे, तुहूं मोर प्याम समान

मेघ बरन तुझ मेघ जटाजुट

रक्त कमल कर, रक्त अधर पुट

ताप विमौचन करून कौर तब

मृत्यु अमृत करे दान –

मरन रे, तुहूं मोर प्याम समान

सुबन्धु ने ही अपने कान बन्द कर लिये । पर उसके शरीर भर में जैसे कान-ही-कान उभर आये । उसे अपने-आप पर लज्जा होने लगी । क्या यही सुबन्धु है वह ! इसी सुबन्धु के लिए उसने पिछले ग्यारह वर्षों में क्या उसने मूल्य चुकाये हैं । नहीं, वह बेवकूफ, भावुक, ईमानदार, स्वप्निल, भीरु, ग्रामीण ब्राह्मण-पुत्र सुबन्धु मर गया । मैंने ही उसे मार डाला ।

सुबन्धु षिविर के सामने टहलने लगा । वह गीत थम गया था । पर उसकी झनझनाहट हवा में मानो तैर रही थी ।

तो यह वही चुड़ैल हिरन है ।

सुबन्धु ने पॉकेट से सिगरेट निकालकर जला ली । मुष्किल से ही फूंक मारी होगी, कि चारों ओर से आवाजें दौड़ीं — अरे ... रे ... रे ... कौन यहां सिगरेट, नषा पी रहा है ? अधर्मी कहीं का !

सुबन्धु ने झट सिगरेट बुझा ली । डांटकर बड़े इतमीनान से बोला, 'क्या बक रहे हो ... कोई तो नहीं है !' फिर एक भद्दी-सी गाली दी उसने, " ... बड़े धर्म करने आये हैं — सात पुस्त पैर घिस-घिसकर मर गये ... "

अगले दिन प्रातःकाल फिर वही यात्रा शुरू होती है । मधुवन-बिहारी की जै !

जै S S S !

उतने हजार आदिमियों का एक जयकार ! दूर-दूर तक सारा ब्रज गूँज उठा । जै मधुवन की !

जै जै S S S S S !

यात्रा पुरु । अब मधुवन से सान्त कुण्ड । तालवन और कुमुदवन होती हुई यह ब्रजयात्रा । जैजैवन्ती की तबीयत में कुछ सुधार है । बहुत कमजोर हो गई है वह । किसी तरह लाठी टेकती हुई चलती जा रही है । षिषु राहुल पतितराम के कन्धे पर मजे से बैठा चला जा रहा है ।

सुबन्धु काफी पीछे-पीछे चल रहा है । बेहर गम्भीर सुगन ने पति का संग छोड़ दिया है । पति की चाल में कुछ सुधार भी हुआ है । अभी कल ही 'बेरिन' और 'मेक्राबिन' का पूरा कोर्स समाप्त हुआ है ।

आज सुबह-ही-सुबह पतितराम ने मालिक से मजाक किया, "काम करे दवा सूई, नाम होय धरम्मई ।"

प्रीतमदास बहुत ही खुष है आज । हँसकर बोला, "अरे पतितराम, सूई तो पिछले साल से ही लगवा रहा हूँ, पर यह लाभ इससे पहले क्यों नहीं हुआ ?"

"सब समय की बात है, बाबू साहेब ।"

प्रीतमदास ने पूछा, "यह किसका बच्चा है तुम्हारे कन्धे पर ?"

"इसी बीमार औरत का । यह बच्चा पैदल चल नहीं पाता ।"

"तो तुम धर्म कर रहे हो ?"

"धर्म नहीं । पुण्य की भी कोई बात नहीं । दया भी नहीं । बस, अच्छा मालूम हुआ मुझे, तभी इसे कन्धे पर उठा लिया ।"

"सुगन वह किस औरत के साथ-साथ चल रही है ? सुबन्धु भी आज हम लोगों के संग नहीं चल रहा है ।"

पतितराम ने उत्तर दिया, "बस, सब अपने मन-पसन्द की बात है । सुबन्धु बाबू आज पीछे-पीछे चल रहे हैं । सुगन बहू पता नहीं किस औरत से बात करती हुई चल रही है । यही तो यात्रा है ! असंख्य आदमी, तरह-तरह के लोग, जिनसे मन चाहे बात करो ... चलो ... साथ छोड़ो, यही तो इस यात्रा की बड़ाई है ।"

निर्भय होकर सुगन ने उस औरत को अपना परिचय दिया । अपने साथ उस सुबन्धु का भी परिचय दिया । फिर उसका परिचय जाना ।

श्रीमती हिरनमयी मुखोपाध्याय — हाबड़ा कलकत्ता । और सुगन ने तब वही प्रश्न किया, “कल रात सुबन्धु आपको देखते ही इस यात्रा से लौट जाना चाह रहे थे । मैंने बहुत मुष्किल से उन्हें रोका । ऐसा क्यों, मैंने उनसे पूछा, उन्होंने यह जवाब दिया कि यह मैं आप ही से पूछूँ ।”

हिरन चुप थी । उसे कुछ भी न सूझ रहा था ।

सुगन फिर बोली, “आप दोनों एक-दूसरे से परिचित हैं ?”

“हां, सुबन्धु ... !”

हिरन के पैर धीमे पड़ने लगे । यात्रा में सुबन्धु की तरह वह भी पिछड़ने लगी । सुबन्धु पास आ गया — दायीं ओर । हिरन ने बड़ी देर तक उसे देखा, फिर वह गम्भीर हो गई ।

सुगन ने बड़े कोमल स्वर में पूछना चाहा, “आप दोनों में कभी ... ”

“नहीं, नहीं, कभी कुछ नहीं ।”

“फिर ? ... बताइये ... जवाब दीजिये ... बोलिये न !”

सुगन जो अभी थोड़ी देर पहले उसे कोमल, सुन्दर, भावनामयी, प्रानमयी लगी थी, वह सारा चित्र हिरन के सामने से धुलने लगा । सुगन की उस बात में जैसे दो खूंखार पंजे उभर आये थे । और वे पंजे अब धीरे-धीरे हिरन के गले को कसते जा रहे थे । हिरनमयी बिलकुल घबराकर पुकार उठी, “सुबन्धु ! ... सुबन्धु !”

सुबन्धु पर कोई प्रतिक्रिया नहीं ।

हिरनमयी घबराकर सुबन्धु के पास चली आयी । आर्त स्वर में बोली, “बोलो, मैं क्या जवाब दूँ ? बोलो, तुम्हीं बताओ !”

सुबन्धु ने ठंडी सांस ली । सोचने में देर न लगी । चलते हुए बोला, “बात यह है कि ये मेरे एक दोस्त की बहन है । जिन दिनों में कलकत्ता में तपेदिक से बीमार था, इनसे मैंने पांच सौ रुपये उधार लिये थे । वे रुपये मैं इन्हें आज तक न दे सका । तभी मैं इनके सामने से उस तरह भाग रहा था ।”

“ओहो ! इतनी-सी बात ! इसमें क्या बड़ी बात है !”

सुगन ने अपने बटुए से पांच सौ रुपये निकाले, “यह लो, वापस कर दो इनके रुपये ।”

सुबन्धु ने इतमीनान से रुपये ले लिये, बोला, “ये रुपये इनके पति के सामने दूंगा ।”

सुगन गर्व से हंस पड़ी । हिरनमयी अवाक् रह गयी । वह लड़खड़ाती हुई अपने पति के पास भागी ।

यात्रा चल रही है । सुगन-सुबन्धु दोनों प्रीतमदास के साथ-साथ चलने लगे । दोपहर का सूरज पश्चिम में अब लटक रहा है । हवा थमी हुई है । उमस बढ़ गयी है ।

सुबन्धु के सामने पून्य में हिरनमयी का वह अवाक् चेहरा झूल रहा है । वह मानो कह रही है — सुबन्धु, अब तुम यह कैसा-कैसा झूठ बोलने लगे हो ? यह क्या हो रहा है तुम्हें ? मैं इतना कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थी ! और सुबन्धु देखता है — हिरनमयी के उस झूलते हुए चेहरे पर आंसू बरस रहे हैं । वही आंसू ... उतनी ही बड़ी-बड़ी बूंदें उसके गालों पर जैसे जम गई हैं ।

सुबन्धु को सहसा याद आने लगा – ठीक इसी तरह उस दिन का चेहरा आज से पन्द्रह वर्ष पहले – जब वही हिरनमयी रंगोली स्टेट से लौटकर बनारस आयी थी और गिदौलिया की उस सूनी हवेली की दीवार पकड़कर रो पड़ी थी । वही अनुत्पन्न मुख गालों पर वही बड़ी-बड़ी बूँदें ।

3

सुबन्धु भी उसी के संग रो पड़ा था । वह जितना ही उसका धीरज बंधाता था, उतना ही अपना धीरज खोता भी जा रहा था । बहुत संभालकर वह हिरनमयी को यूनिवर्सिटी गर्ल्स होस्टल ले गया था । उसको धीरज बंधाने के लिए वह हाथ जोड़कर बोला था, “हिरन दी ! तुम्हें मेरी श्रद्धा की कसम, तुम अब उस यषोवर्धन को भूलने की कोषिष करो । तुम कितने-कितने दायित्व लेकर कलकत्ता से यहां बनारस आयी थीं, अब उन्हीं को याद करो, हिरन दी ! सुबन्धु तुम्हारा भाई है, मैं तुम्हारे हित के लिए अपना प्राण तक न्यौछावर कर सकता हूँ ।”

हिरनमयी उस दिन अपने होस्टल में घुसना तक नहीं चाह रही थी । सुबन्धु का हाथ पकड़े-पकड़े वह फिर उसी रिक्शा पर बैठ गयी थी । रिक्शा यूनिवर्सिटी के बंगल से गंगा की ओर बढ़ा था । हिरनमयी का शरीर जल रहा था । हाथ-पैर सब कांप रहे थे ।

गंगा के तुलसीघाट पर आकर वह सीढ़ियों से नीचे दौड़ी थी – भरी हुई गंगा में कूद जाने के लिए । सुबन्धु ने बढ़कर हिरन दी को कमर से पकड़ लिया था । हिरनमयी पागल हो गयी थी । साक्षात् चण्डी का रूप । सुबन्धु के मुंह पर तड़ातड़ उसके हाथ उठे थे । उसके हाथ पर जगह-जगह उसने दांत लगा दिये थे । उसका वह लोहू-लुहान हाथ – पर सुबन्धु ने हिरन दी को तब आत्महत्या नहीं करने दी ।

तब इसी सुबन्धु ने वह बड़ी बात कही थी, “अगर प्रेम है तो हत्या कैसी ?”

रात-भर सुबन्धु उसी गंगा के तट पर हिरनमयी को समझाता रहा । समझाता रहा । और हिरनमयी निर्दोष षिषु की तरह सिसक-सिसककर वहीं रोती रही ।

यषोवर्मन की उस प्रिया का वही मुख आज इतने वर्षों बाद सुबन्धु के सामने फिर कौंध गया । सुबन्धु को गर्व था कि वह सब कुछ भूल चुका है । उस सबको वह अपने पिछले वर्षों के जीवन से पाट चुका है – पर आज वह सहसा देखता है कि भूला कुछ नहीं है : कहीं से भी कुछ पटा-घटा नहीं है । उसका मरा हुआ सुबन्धु बेताल की तरह उसके गले से लटका हुआ है । वही बेताल आज पूछ रहा है, “मनुष्य क्या कुछ भूल सकता है ?” फिर वही बेताल उसे उत्तर देता है, “न भूलना ही तो उसका अभिषाप और जीवन दोनों है ।”

सुबन्धु अपने बेताल का गला घोंटकर मार डालना चाहता है । बेताल ठहाका मारकर हँसता है, ‘तुम भूत को मारने चले हो ! अच्छा, मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो – फिर मैं तुमसे अदृष्य हो जाऊंगा । बताओ, तुम जिसे मारते हो, वह कौन है ?’

सुबन्धु साफ उत्तर देता है, ‘वह जो हमारा षत्रु है । जिसने हमें कष्ट दिया है ’ ’ ’ जिसने हमारा अपमान किया है ।’

बेताल हँसता है, ‘नहीं ’ ’ ’ गलत ! तुम जिसे मारते हो, वह तुम्ही हो ।’

सुबन्धु उदास हो गया । उसी बीच न जाने कहां से, वर्षों का भूला-बिसरा मुचकुन्द उसे याद आया । उन्नीस सौ बयालीस में बनारस यूनिवर्सिटी का क्रांतिकारी । जब देखो, वह खिस-खिस हँसता ही रहता था ।

उस मुचकुन्द ने हिरनमयी को देखकर तब कहा था, “क्रांति-दल के लायक यह लड़की बिलकुल नहीं है । यह तो जरूरत से ज्यादा गम्भीर है । इसके सम्पर्क में जो आएगा, उसे सिर्फ उदासी मिलेगी । जितनी बार जो लड़की एक दिन में हँसे, उतने ही गुना अच्छी ।”

हिरनमयी जुलाई में बनारस यूनिवर्सिटी आयी थी । ठीक नौ अगस्त बयालीस को देश में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आन्दोलन पुरु हुआ था । यूनिवर्सिटी पूरे तीन महीने तक बन्द थी । आयुर्वेदिक कॉलेज के प्रोफेसर डॉक्टर बडोला सारे बी. एच. यू. फोर्स के चीफ कमान्डर थे । उनके चीने कमाण्डर था संस्कृत कालेज का वह आनन्द – कचौड़ी गली में रहने वाला – और दूसरा वह लंगड़ा संन्यासी । मुचकुन्द का दर्जा तीसरा था । बिरला, रुइया, ब्रोचा होस्टलों में बम बनते थे । गुम्मी चिट्ठी लिखी जाती । यूनिवर्सिटी के चारों ओर फौज के सिपाही खड़े रहते । सुबन्धु भी उसी में एक क्रांतिकारी सैनिक था । बाहर से यूनिवर्सिटी के भीतर आधी रात के समय खबर लाता और दुपट्टे में बम बांधकर बाहर ले जाता । एक दिन हिरनमयी ने उससे कहा था, “मुझे भी इस महायज्ञ में क्यों नहीं ले लेते ?” तब यषोवर्मन ने सुबन्धु को मना किया था कि हिरन को इससे दूर रखा जाये । इस पर हिरनमयी ने दो दिनों का अनषन किया था । इससे हिरन के प्रति सुबन्धु की श्रद्धा बहुत बढ़ी थी ।

हर तीसरे दिन डॉक्टर बडोला तूफान की तरह घोड़े पर चढ़ा आता था और होस्टलों में आदेश का पर्चा बांटकर उड़ जाता था । अंग्रेज सिपाही उसके घोड़ों का पीछा करते थे, तब डॉक्टर बडोला रूपयों की थैली में से उनके सामने रूपयों की बौछार कर देता था । सिपाही रूपये बीनने लगते थे और डॉक्टर बडोला भाग निकलता था ।

आज विष्वास नहीं होता कि इस देश में तब कुछ ऐसा भी घटा था, जो इतना महान और इतना उत्सर्गमय था । कोई अखबार नहीं, पर न जाने कौन-कौन अदृष्य, अनजान लोग चारों ओर अखबार बांट जाते थे । कोई सेना नहीं, फौज नहीं, हथियार बन्द नहीं, पर देखते-देखते ही बनारस, गाजीपुर, आजमगढ़, बलिया, देवरिया की रेलवे लाइनें उखाड़ कर फैंक दी गयीं । स्टेपनों को ध्वस्त कर दिया गया । थानों को जलाकर खाक-स्वाहा । तार और टेलीफोन के खंभों को धराषायी । वह कैसी दीवानगी छापी थी ! सिर पर कफन बांधे षहीदों की वह अपार टोली ! कहां गए वे लोग ? महान पागलपन कहां गया ?

सुबन्धु के बड़े भाई साहब दषाष्वमेघ घाट वाले मकान को छोड़कर तब चेतगंज थाने के पास रहने लगे थे । सुबन्धु छत के ऊपर बरसाती वाले कमरे में रहता था । तीन महीने बाद नवम्बर के दिनों में तब यूनिवर्सिटी खुली ही थी । उसी दिन सुबन्धु ने देखा था, आनन्द और लंगड़ा संन्यासी चेतगंज थाने की जेल-कोठरी में बन्द है । दोनों को हथकड़ी-बेड़ी में बांधे हुए कोठरी में से आंगन में ले आया गया था । सामने अंग्रेज एस0पी0 खड़ा था । थानेदार ने दोनों को बेंत से मारते हुए कहा था, “चलो, अपनी जबान से साहब के जूते चाटो !” आगे बढ़ो !” चलो !”

थानेदार और सिपाहियों की बेंत आनन्द और लंगड़ा संन्यासी पर पड़ने लगी । दोनों निर्विकार अपनी-अपनी जगह पर खड़े रहे । सुबन्धु तब छत पर से चिल्ला उठा था । दोनों बन्दी क्रान्तिकारियों की आंखें सहसा सुबन्धु की ओर उठी

थीं । वे आंखें ! सुबन्धु उसी छत पर से पत्थर के टुकड़े में चिट्ठी और पेंसिल बांधकर थाने के आंगन में फेंकता था । फिर उसी पत्थर के सहारे आनन्द और संन्यासी भी उसी खत के पीछे सादी जगह पर जवाब लिखकर छत पर फेंकते थे ।

आज यह सब स्वप्न की तरह सुबन्धु को लग रहा है । कहां गये वे दीवाने आनन्द और लंगड़ा संन्यासी ? वह हंसमुख बहादुर मुचकुन्द कहां होगा ? डॉक्टर बडोला की छाती में तो गोली लग गई थी । वे शहीद हुए थे । बाकी वे कफन बांधे दीवाने कहां हैं ?

यात्रा चल रही है । हिरनमयी का वकील पति पुष्पांशु मुखोपाध्याय अपनी किताब में पढ़ रहा है — इतिहास को बनाता कौन है ? उसे बनाता है सामाजिक प्राणी । वही इसका एकमात्र तत्व होता है । सामाजिक इन्सान स्वयं अपने, अर्थात् सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण करता है ।

इतिहास !

इसमें जो मूक है । जो केवल भक्ति की करुणा है । वह क्या है ? वह अकथ इतिहास !

सुबन्धु सोचता है — इस इतिहास में सिर्फ सुबन्धु और इस हिरनमयी को ही आज इतने वर्षों बाद आमने-सामने मिलना था क्या ? जो बिगड़ता है, नष्ट करता है वह भी तो इतिहास की ही मदद करता है । पर मैं इतिहास नहीं बनना चाहता । मैं किसी का माध्यम भी अब नहीं हूँ — मुझे इन दोनों स्थितियों से नफरत है — मैं केवल सुबन्धु हूँ — केवल ।

उन्हीं दिनों बड़े भाई साहब को टी० बी० हुई थी । मुंह से रात में अकसर खून थूकते थे । सुबह जब सुबन्धु उठता था, तो देखता कमरे का पूरा फर्ष जगह-जगह खून से रंगा हुआ है । भाई साहब बुखार के नषे में इस वक्त सो रहे हैं । वह पूरे कमरे को गीले कपड़े से पोंछता । फिर धीरे-धीरे उसकी धुलाई करता, ताकि भाई साहब कहीं जग न जायें । वह तब नहाधोकर भोजन बनाता । भाई साहब के कपड़े बदलता । दवा पिलाता, स्वयं उनको इंजेक्शन लगाता । और उन्हें सुलाकर, जाड़े, बरसात और गर्मी में वही धोती-कुर्ता पहने हुए पैदल यूनिवर्सिटी जाता । हां, तब वह बेतरह सिगरेट और चाय पीने लगा था ।

क्योंकि वह उस टूटती हुई हिरन को सिर्फ आरपार देखता था और उसके मर्मन्तिक प्रश्नों की धार पर कट-कट जाता था । हिरनमयी सुबन्धु से पूछती थी — तुम्हारे उस दोस्त ने मेरे साथ ऐसा क्यों किया ? यह कोई खेल समझा था क्या ? यह निर्मम खेल कहां से सीखा ? बोलो, बताओ मुझे ! तुम्हीं तो माध्यम थे । इस रक्त में कहीं तुम्हारे भी तो हाथ रंगे हैं !

सुबन्धु सिर्फ इतना ही कहता था — भूलने की कोषिष करो उस यषोवर्मन को । सच, मैं उसे ऐसा नहीं जानता था ।

पर आज सुबन्धु को अनुभव हुआ कि सच कुछ भूला नहीं जा सकता । और उसमें भी प्रेम और नफरत — ये दो भाव तो कभी मिट ही नहीं सकते । हिरनमयी ने सुबन्धु को झकझोरते हुए पूछा था — तुम्हारे इधर के देश में लोग ऐसा ही करते हैं क्या ? सुना था राजकुमार लोग जंगलों में घूम-घूमकर पिकार करते हैं । सिर्फ अपनी खुषी और अंहकार की षान्ति के लिए दूसरों की हत्या करते हैं ! कितना गजब का खेल है यह ! हिरनमयी बस घायल मृगी की तरह रो पड़ती थी और उस रूदन में से सिर्फ सदा यही प्रश्न निकलता था — बोलो । तुम्हारे दोस्त ने ऐसा क्यों किया ?

एक दिन सुबन्धु के मुंह से निकला – पर मेरे दोस्त ने तुम्हारा कुछ अहित तो नहीं किया ! वह तो बस अपनी सच्चाई में भाग गया ।

बाप रे, गजब का था वह दृष्य ! हिरनमयी साक्षात् चंडी की तरह सुबन्धु पर टूटी थी । उसके बोलते हुए मुख पर अपने दोनों पंजों से मानो आक्रमण किया था । लाल-लाल आंखों में से जैसे आंसुओं की चिनगारी फूटी थी – निर्दयी ... अन्यायी ! तू किस हित-अहित की बातें कर रहा है !

सुबन्धु ने तब एक अजब निगाह से हिरनमयी को देखा था । हिरनमयी उस निगाह को फोरन समझ गयी थी बोलो – यानी तुम यह सोच रहे हो कि हिरनमयी को भी तो उसके बारे में कुछ नहीं पता था ... !

हिरनमयी षिषुवत हँसी थी – सुबन्धु ! वह एक ही पता काफी था ... उसके बाद और पते क्या करती !

यात्रा चल रही है । दिशाओं में धर्म की जयजयकार गूँज रही है । पर सुबन्धु उस सारे षोर में, जय-ध्वनियों में केवल आज यषोवर्मन के साथ हिरनमयी का वह रक्ताभ मुख देख रहा है जिसके पीछे सुबन्धु का वह पीला मुख राहुग्रस्त चन्द्रमा की तरह दिख रहा है ।

– सुबन्धु, तुम्हारा मुख इतना पीला हो गया । क्यों ? तुम क्यों ... उस 'तुम' की व्यथा को हिरनमयी ने षायद कभी नहीं समझा ।

एक दिन उसने पूछा था – तुम इतनी सिगरेट क्यों पीते हो ?

– और कुछ अच्छा नहीं लगता ।

चाय और सिगरेट – यही खुराक थी सुबन्धु की ।

हिरनमयी के उस मुख के पास सुबन्धु का मुख द्वितीया के चन्द्रमा की तरह उठना चाहता था ... पर एक काला बादल न जाने कहां से उमड़-उमड़कर आता है । उस काले

बादल का वह टुकड़ा आज इस यात्रा के आसमान में भी खिंचा है ।

ब्रह्मांड में इतनी वायु है ... पर उस काले बादल को वह सब वायु आज तक न उड़ा सकी ।

यात्रा चल रही है ।

सुबन्धु सूने आसमान में काले बादल के उस टुकड़े को निहार कर रह जाता है । बोध केवल षरीर और वस्तु के आधार का है न ! तभी ... तभी ! फिर भी तू सच्चाई की बात करता है ! तेरा दोस्त अपनी सच्चाई से भाग गया ! ... सच इतना कायर नहीं होता ।

फिर तब हिरनमयी से सुबन्धु सामना नहीं कर पाता था । वह उससे दूर-दूर भागता था – जैसे तब हिरनमयी यषोवर्मन से दूर-दूर भागती थी । पर कोई क्यों दूर-दूर भागता है ? आज सुबन्धु सब साफ-साफ समझ ही नहीं, बल्कि जैसे प्रत्यक्ष देख रहा है । – जो खिंचता है वही भागता है । जो किसी केन्द्र से बंध जाता है ... उसे ही भागना पड़ता है ।

एक दिन हिरनमयी बिलकुल दूसरी ही दषा में सुबन्धु से अपने आप मिली थी । सर्वथा षांत । उसके मुख पर जो पीलापन छाया था, वह उस दिन जैसे धुला था । उसने सुबन्धु का हाथ केले के पुष् की तरह थामकर कहा था – सुबन्धु,

मैं तुम्हारे दोस्त को नहीं भूला सकती ! तुम्हारे इस बनारस का हर कण मुझे उसके मुख की तरह लगता है ... हर क्षण वह मेरे कानों में मुझे पुकारता है ।

सुबन्धु नीचे से ऊपर तक हिरनमयी के उस स्पर्श से कांप रहा था । और सुबन्धु एक अजब खुबसूरत से भर रहा था ।

हिरनमयी बहुत ही धीमे स्वर में बोली — यह बनारस मुझे छोड़ना होगा । यह बनारस और वह बनारस ।

जाने के दिन नजदीक आ गये थे । हिरनमयी ने पूछा था सुबन्धु से

— तुम्हारे पास तुम्हारे दोस्त की कोई चिट्ठी—पाती नहीं आयी ?

नहीं !

वह चिट्ठी—पाती नहीं लिखता ?

पता नहीं ।

सुबन्धु का एम0 ए0 फाइनल इम्तहान पहले ही हो गया था । हिरनमयी बिना एम0 ए0 प्रीवियस की परीक्षा दिये बनारस छोड़ रही थी । सुबन्धु के लाख समझाने पर भी केवल यही उत्तर देकर रह जाती थी कि मेरी परीक्षा तो हो गयी । परीक्षा—फल भी मालूम हो गया । अब और क्या चाहिए मुझे ? सुबन्धु ने तब अपने पूरे व्यक्तित्व से साहस बटोरकर हिरन दी से पूछा था, “जो सत्य नहीं था, तो उसकी चोट को इस तरह मूल्य क्यों बनाना ?”

हिरन ने उसी तरह उत्तर भी दिया था, “यही तो बात है — यह तो सिर्फ मेरा इस तरह से सोचना है । वह विवशता थी । केवल प्रेम था वह । ऐसा प्रेम, जो किसी में भी सिर्फ एक ही बार जन्म लेता है ... एक ही बार जो ... !

हिरन के होंठ काँपने लगे थे ।

सुबन्धु निरुत्तर हो गया ।

मई में सुबन्धु का परीक्षाफल निकला । वह एम0 ए0 पास हो गया । हिरन बिना अपनी एम0 ए0 प्रीवियस की परीक्षा दिये कलकत्ता वापस जा रही थी, पंजाब मेल से :

सुबन्धु के बड़े भाई की तबीयत उस दिन बहुत खराब हो गयी थी । सुबह से दोपहर तक वह भाई साहब को संभालता ही रहा । उस बीच उसे हर क्षण यह याद आता था कि हिरनमयी आज चार बजकर बत्तीस मिनट पर सदा के लिए बनारस छोड़ रही है ।

जाकर कहीं साढ़े तीन बजे सुबन्धु को फुरसत मिली । भाई साहब को सुलाकर वह दौड़ता हुआ चौक बाजार गया । इन्द्रवेला और मोंगरा के दो पुष्पहार लिये और दोना भर चमेली के फूल । सबको लिए हुए वह स्टेशन भागा । प्लेटफार्म पर पता चला कि नम्बर तीन के प्लेटफार्म पर पंजाब मेल बस छूटने ही जा रही है । नम्बर एक पर एक पैसेंजर ट्रेन दूसरी दिशा में छूटने के लिए तैयार थी । सुबन्धु पसीने से तर हो गया ।

वह प्लेटफार्म से नीचे कूद गया । पैसेंजर ट्रेन के नीचे से सरककर वह उस पार होने लगा । सामने पंजाब मेल पर बैठी हुई हिरनमयी भय से चिल्ला उठी । सुबन्धु दौड़ा हुआ पास पहुंच गया । उसके पुष्प देते—देते पंजाब मेल धीरे—धीरे खिसकने लगी ।

सुबन्धु जैसे गूंगा हो गया था । वह ट्रेन के साथ—साथ चलता हुआ बार—बार कुर्ते की बांह से अपना मुंह पोंछता जाता था ।

“सुबन्धु, फिर मिलोगे न ?” मेरा पता संभालकर रख लिया न ? तुम अब एम0 ए0 के बाद क्या करोगे ? तुम .. ?

गाड़ी तेज हो गयी । सुबन्धु संग-संग दौड़ने लगा । पर वह हिरनमयी का आखिरी वाक्य पूरा नहीं सुन सका । स्वयं तो कुछ बोल ही नहीं पाया । प्रणाम भी नहीं कह सका ।

आज सुबन्धु इस दृष्य को सोचकर अपने-आप पर हंस रहा है । और अपने उस सुबन्धु को गालियां दे रहा है । मूर्ख भावुक सुबन्धु ! स्त्री के सामने इस तरह पूँछ हिलाने वाला । उसके तलवे सहलानेवाला अपदार्थ सुबन्धु ! तभी तो हर लड़की झट उसे अपना भाई बना लेती थी । भाई साहब ! और वह बुजदिल, बेवकूफ, बददिमाग उन्हें दीदी मानने के लिए मजबूर हो जाता था । वह बेचारा सुबन्धु मर गया ।

आज का सुबन्धु बिलकुल दूसरा है .. बिलकुल दूसरा । दीदी नहीं, स्त्री को स्त्री मानने वाला । उसने पिछले दस वर्ष में अनुभव करके देख लिया ।

4

यात्रा पड़ाव पर रूक गई थी । जैजैवन्ती की तबीयत ठीक हो चली थी । जैजैवन्ती ने तब जैसे पहली बार पतितराम को देखा । पूछा, “तुम कौन हो ?”

पतितराम ने उत्तर दिया, “आगरा के एक सेठ का सेवक – उसका बंहग ढोने वाला ।”

“तुम्हारी जात !”

फिर वही प्रश्न ! पतितराम के सामने वैरागी साधुओं का वह अखाड़ा याद आया । उस गुरु महाराज का चेहरा कौंध गया । वह झूठ बोलने ही जा रहा था । पर सच बोल गया, “मेरी जात .. कुम्हार !”

“कुम्हार ! तो तुमने मेरा बदन छुआ ? उस दिन तुम्हीं ने मेरा सिर दावा, पैर मला ?

पतितराम चुप ! वह टुकुर-टुकुर उस स्त्री का क्षुब्ध मुँह देखता ही रह गया । स्त्री उसके सामने से हट गयी । नहाने चली गई । गंगाजल पिया । माथे पर तुलसीदल लगाया । पैरों से हल्दी छुलायी । तुलसीदल और हल्दी की गांठ को एक कपड़े से बांधकर पूरब दिशा में फेंक दिया । एक गिलास जल पीकर वह तपाक से बोली, “मैं विधवा ब्राह्मणी हूँ । खबरदार, जो तुमने मुझे अब छुआ !”

“ठीक है, मैं आपको नहीं छुऊंगा । पर इस बच्चे को तो मैं छू सकता हूँ ?”

“नहीं, वह अब पैदल चलेगा ।”

झट बच्चा बोल उठा, “नहीं, मैं कन्धे पर चलूंगा ।”

जैजैवन्ती ने बच्चे के मुँह पर झट चपत मार दिया । बच्चा रोता हुआ पतितराम के अंक से लिपट गया ।

पतितराम ने विनय के स्वर में कहा, “इस अबोध बच्चे को छिमा कीजिए । यात्रा के अन्त में इसे गंगाजल से नहलवा दीजिएगा ।”

यह कहकर पतितराम वहां से चला आया। बहुलावन के इस पड़ाव पर रासलीला देखने, रसिया सुनने आसपास के गांवों की तमाम भीड़ आयी थी ।

रासलीला में आज हाऊलीला उर्फ माटीखावन लीला हो रही है । मंच पर हारमोनियम बजने लगा – साथ दे रहे हैं मृदंग, जांझ, खरताल, मंजीर और बांसुरी । समाजी लावनी गायन का अलाप ले रहा है । मनुष्यों की अपार भीड़ चारों ओर बैठी हुई है। अलाप सम पर आता है । फिर रसिया के बोल उभरते हैं :

मारै मति मैया, बचन भरवाय लै, कील करवाय लै,
सौंह गंगा की खवाय लै, चाहे जमुना की कराय लै
क्षीर सागर में मोहि ठाढ़ी करवाय लै
मारै मति मैया '...' !

दृष्य में तब यषोदा कृष्ण के साथ आती है । चारों ओर से जय-जयकार गूंजने लगता है । लोग फूलमालाओं की वर्षा करते हैं । हिरनमयी अपने आंचल से चमेली का हार निकालकर कृष्ण पर फँकती है ।

यषोदा कहती है : 'दूरि खेलन जिन जाहु लाल वन हाऊ आये हैं ।' बाल ठाकुर कृष्ण उत्तर देते हैं : 'अरी मैया, देखि चार वेदन कूं लैके संखासुर दानव जल में जाय दुबक्यौ हौ, वा जल में कोई जाय सकैं नाय हो, तब मैया मैंने मच्छी की रूप धार कै वाकूं मार्यौ हो । अरी मैया, हाऊ तो मैंने वहां तहां देखौ नाय हो ।'

यषोदा : 'अरे लाल, तैने ही ?'

कृष्ण : 'हां री मैया, मोते तो तैने ही कही ही ।'

यषोदा : 'अरे लाल, झूठ क्यों बोलै है ? जे मुंह में पुनि माटी ?'

रसिया गानेवाला अपनी हारमोनियम तेज कर देता है । बांसुरी, मृदंग, मंजीर की गत धीमी पड़ जाती है । रसिया गाता है :

'माटी के मिस बदन बिकास्यी जब जननी डर पाऊ

मुख भीतर तिरलोक दिखाये तबहु प्रतीत न आऊ ।

बांसुरी, मृदंग, मंजीर की गत तेज हो जाती है । नृत्य संगीत पर छा जाता है । ठाकुर कृष्ण नाचने लगते हैं । पृष्ठभूमि में वेनु बज रही है ।

सुबन्धु दूर अकेला बैठा छिपकर सिगरेट पी रहा है । सच, पृष्ठभूमि में वेनु बज रही है ।

बड़े भाई साहब भुवाली-सेनीटोरियम में भर्ती हो गये । सुबन्धु उन्हें वहां छोड़कर काठगोदाम से बरेली होता हुआ बनारस आ रहा था । लखनऊ स्टेशन पर पहुंचा, तो सुबह हो रही थी । बीस जुलाई का दिन था । स्टेशन के पास ही कोई बारात टिकी थी । षहनाई रा राग , रवी उमड़ रहा था । उस राग के स्पर्ष से सुबन्धु के तन-बदन पर जैसे कोई मूर्च्छा छाने लगी । हिरनमयी के शरीर से जो केले के फूल-जैसी सुगन्ध आती थी, जो आज उसे बनारस ले जा रही थी । बनारस स्टेशन आया, तो सुबन्धु को लगा, जैसे आज वहीं से उसकी कोई नयी यात्रा शुरू हो रही है । वह ट्रेन से नीचे नहीं उतर पाया । ट्रेन वहां से चल पड़ी । डिब्बे में बैठे हुए सुबन्धु को लगा – जैसे आज वह हिरनमयी के संग-संग

कलकत्ता जा रहा हो । और सुबन्धु की छाया प्लेटफार्म पर उसी डिब्बे के साथ-साथ दौड़ रही हो । हिरनमयी का वहीं अन्तिम, अधूरा वाक्य सुनने के लिए ।

रासलीला में मृदंग के साथ वेनु बज रही है, सुबन्धु पंजाब मेल में बैठा हुआ कलकत्ता भागा चला जा रहा है । बार-बार हिरनमयी का दिया हुआ पता पढ़ रहा है – सूर्यसेन लेन, भवानीपुर, कलकत्ता ।

“आपनी के ?”

“आपनी कोथा थेके एषेछेन ?”

“काके खूंजछेन ?”

ये तीनों प्रश्न एक के बाद एक – एक ही सांस में दूसरी मंजिल से एक वृद्ध पुरुष षुद्ध बंगला में कर रहे हैं । सुबन्धु बहुत अच्छी बंगला बोलने लगा है । वह उतनी ही षुद्ध, स्वाभाविक बंगला में जवाब दे रहा है –

“आमार नाम सुबन्धु ।”

“आमी बनारस थेके आषछी ।”

“हिरनमयी संगे देखा कोरते एषेछी ।”

वृद्ध ने सुबन्धु को ऊपर बुला लिया । नीचे से ऊपर तक देखा । उनकी वृद्धा स्त्री भी उसे घूरकर देखती रहीं ।

तब वृद्ध ने बताया, “मैं हिरनमयी का नाना हूँ – यह उनकी नानी है ।”

“हिरनमयी कहां है ?” सुबन्धु बेचैन था ।

“वह तो यहां से चली गयी ।”

“कहां ?”

“मथुरा – वहां एक कॉलेज में लेडी टीचर ।”

आगे सुबन्धु ने कुछ नहीं पूछा । वृद्ध महाशय बोलते गये, “इलाहाबाद में हिरन का मामा अफसर है, उसी ने मथुरा में नौकरी दिला दी । कारण, हिरन तो यहां कलकत्ता में एक दिन भी नहीं रहना चाहती थी ।”

सुबन्धु उल्टे पांव वहां से लौटा । न खाना, न पानी, न विश्राम । वही सिगरेट, वही चाय । ट्रेन में बैठा, तो उसका सिर फट रहा था । सारी देह टूट रही थी और धीरे-धीरे उस पर बुखार चढ़ता जा रहा था ।

सुबन्धु को याद है – इतना कि जैसे अभी कल की की घटना हो । कलकत्ता की वह अपर इंडिया ट्रेन, शाम के वक्त बनारस पहुंची थी । वह तब भी बनारस नहीं उतरा । कहां जाये वह बनारस में ? वही जड़वत् वह उसी ट्रेन में बैठा रहा । कहां वह टूंडला स्टेशन ! वहीं अपर इंडिया छोड़कर वह मथुरा पैसेंजर में बैठा था । बुखार अब भी शरीर में था । आंखों से चिनगारी निकल रही थीं जैसे । पर उन्हीं दहकती आंखों में उसकी हिरनमयी बैठी थी ।

एक किनारे से सारे स्कूल-कॉलेजों में वह हिरनमयी को ढूंढता रहा । ढूंढता रहा । अन्त में मिली वह । पर अभी भेंट नहीं हो सकती । लेडी प्रिंसिपल की सख्त आज्ञा थी यह । स्कूल के सामने भड़भूजे की दुकान थी । वहीं एक टूटी चारपाई पर सुबन्धु कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा और उसकी बेहद भारी आंखें वहीं मुंद गयीं ।

पांच बजने के बाद हिरनमयी ने दूँढकर उसे जगाया । सुबन्धु की यह दषा देखकर वह हैरान रह गयी । सुबन्धु ने भी देखा, हिरनमयी के सफेद वस्त्र — नीचे से ऊपर तक धवल-वसना । सिर का जूड़ा खुला-खुला सा । आंखों में शून्य । सिर्फ वही आंखें । चितवनविहीन । रागहीन !

मृदंग पर थाप पड़ी । सुरताल बदल गया । रासलीला समाप्त होने को है । रसिया गानेवाला जनता की मांग पर एक लावनी गाने जा रहा है । मंजीरा वह खुद बजा रहा है । वेनु बजकर चुप हो गयी है । नृत्य खत्म हो चुका है । मंजीरा और पखावज । बांसुरी भी नहीं । गायक ने मना कर रखा है ।

पर बांसुरी की धुन जैसे लावनी के स्वर में छिपी है ।

सुबन्धु ने जाने कितनी देर तक हिरनमयी के पीछे उसी तरह छिपा माथा झुकाये खड़ा रहा । यह सब बहुत पहले की बात है ।

आज यहां इस यात्रा-षिविर में पड़ा सुबन्धु जब यह सोच रहा है, उसका माथा इस समय भी झुका हुआ है । लावनी के सुर में छिपी बांसुरी थम गयी । मंजीरा बस रह-रहकर खनक रहा है । थाप बस केवल पखावज पर उभर रही है ।

सुगन बस सामने आकर खड़ी हो गयी । पूछा —

“नींद नहीं आयी ? पड़े-पड़े क्या सोच रहे हो ?”

“तुम्हें !”

“मुझे !” मैं तो तुम्हारे पास ही हूँ ।”

“जो पास है, वह क्या नहीं सोचा जाता ?”

“नहीं, वह जिया जाता है ।”

सुबन्धु को हंसी आ गयी । उसने सुगन के दोनों हाथ पकड़कर चूम लिये । सुगन लजा गयी, “छोड़ो, कोई देख लेगा ।”

“तो क्या होगा ?”

“यात्रा का नियम भंग होगा ।”

“पाप होगा क्या ?”

“नहीं, पाप क्यों होगा ?” केवल पुण्य होता है ।”

सुगन कहने लगी, “इसी पुण्य से तो पति की तबीयत ठीक हो चली है । उसके हाथ-पैर में शक्ति आ रही है ।”

“सच ?”

“बिलकुल सच !”

सुगन ने बताया, पिछले दिन की यात्रा में और आज रासलीला के बीच वह हिरनमयी सुबन्धु के बारे में बहुत पूछ रही थी । सुबन्धु को तुम कितने दिनों से जानती हो ? सुबन्धु क्या काम करता है ? उसने ब्याह क्यों नहीं किया ? सुबन्धु-तुम्हें कैसा लगता है ? सुबन्धु मेरे विषय में क्या सोचता है ?”

“तुमने भी कुछ पूछा ?”

“मैंने तो उसे जवाब दिया ।”

“प्रश्न भी करती !”

“प्रश्न वह करता है, जिसे संदेह होता है । संशय ’’ ’’ ”

सुबन्धु मुस्कराता, “सच्चे प्रेम में ही तो संदेह जागता है ।”

सुगन जल गयी, “तो तुम्हारी वह तुम्हें प्रेम करती है न ! तो जाकर तुम उससे बात क्यों नहीं करते ?”

“तुमसे तो कर रहा हूँ ।”

दोनों हंस पड़े ।

यात्रा आगे बढ़ी । बहुलावन से कुसुम सरोवर, जहां राधाकुण्ड है । नम्बर चार सौ सत्ताईस – लुंजू पटेल, नम्बर सोलह सौ एक – राधाबाई से कहता है, “राधाकुण्ड कृष्ण का रचा हुआ है । महारास में लीला करते-करते जब राधा थक गई और उन्हें बड़ी प्यास लग आयी, तब कृष्ण उन्हें संग लिये यहां चले आये । अपनी बांसुरी से यहां खोदा और जल निकल आया, यही है राधाकुण्ड ।”

सुबन्धु चुपचाप चल रहा है । उसके बायीं ओर सुगन चल रही है । हल्के गुलाबी रंग की साड़ी पहने हुए । दायीं ओर प्रीतमदास चल रहा है ।

इसी तरह चुपचाप चलकर तब सुबन्धु मथुरा से बनारस आया था । चलते समय हिरनमयी ने कहा था, “सुबन्धु ! तुम बनारस जाकर फौरन कोई काम करो । रिसर्च या कोई ट्रेनिंग ’’ ’’ ताकि तुम्हें एक अच्छी-सी नौकरी मिल जाये ।”

सुबन्धु ने रिसर्च में प्रवेश लिया । षोध का विषय था – ‘विक्रमादित्य का युग – एक सांस्कृतिक अध्ययन’ । उसके मन-प्राण का विषय था यह । कालिदास उसका बड़ा ही प्रिय लेखक है । बी० ए० में संस्कृत-साहित्य उसका एक विषय भी रहा है । सुबन्धु की प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत में ही पुरू हुई थी । हिन्दी तो उसने बहुत बाद में पढ़ी । सुबन्धु की मां ने जब सुबन्धु सिर्फ सात वर्ष का था, तभी उसे पाणिनि की सारी ‘अष्टाध्यायी’ रटायी थी । ग्यारह वर्ष का जब सुबन्धु हुआ – तभी मां स्वर्ग सिंधार गयी थी ।

अकेला सुबन्धु – मामा और चाचा के यहां घूमता-भटकता रहा । उपेक्षित, स्नेहहीन ! साथ रहने वाली यही संस्कृत भाषा थी – इसी का साहित्य – सोलह वर्ष की अवस्था में वह एक दिन ‘कुमारसम्भव’ पढ़ते पकड़ा गया था । तभी बेतरह पीटा था संस्कृत के गुरु – व्याकरणाचार्य ने ।

रिसर्च में वही कालिदास का युग सुबन्धु के सामने था । वही स्वर्णिम युग – जिसका अमर गायक कालिदास था । रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत और ऋतुसंहार जिसके काव्य थे । और अभिज्ञानषान्तलम् ‘विक्रमोर्वशीयम्’ और ‘मालविकाग्निमित्रम्’ जिसके नाट्य थे । जिस युग की सुन्दर स्त्री थी – तन्वी प्यामा षिखरिदषना ’’ ’’ दुबली-पतली नन्हें-नन्हें दांतों वाली, पके हुए बिम्बाफल के समान लाल होंठों वाली, पतली कमर वाली, डरी हुई हरिणी के समान आंखों वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के बोझ से धीरे-धीरे चलने वाली और स्तनों के भार से कुछ आगे को झुकी हुई युवती ।

और वह विक्रमादित्य का युग विलीन हो जाता है, बीसवीं सदी के इस दशक में । सुबन्धु के भीतर के देश-काल में छा जाती है वह हिरनमयी । वही तन्वीप्यामा षिखरिदषना पक्वबिम्बाधरोष्ठी स्तोकनभ्रा स्तनाभ्यां ’’ ’’

सुबन्धु रिसर्च नहीं कर पाता । 'ऋतुसंहार' की वे पंक्तियां उसे जकड़कर बैठी रह जातीं :

षिरसि बकुलमालां मालतीभिः ।।। स्तनैः सहारैर्वदनैः । ससीधुभिः स्त्रियों रतिं ।।।

वह रिसर्च के नाम पर रोज हिरनमयी को पत्र लिखता है । पत्रों में कालिदास के वही सब छन्द — कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग का मदनदहन, वह अष्टम सर्ग — षंकर-पार्वती संयोग श्रृंगार, 'षाकुन्तलम्' का वह तीसरा अंक, 'मेघदूत' के उत्तरमेघ का वह कवित्त और 'ऋतुसंहार' का वसन्त-वर्णन ।।। !

आज सुबन्धु को अपनी उस मूर्खतापूर्ण स्थिति पर हंसी आ रही है । वह सोचता है कि उसने किसके सामने वह हृदय इस तरह लुटाया था !

यात्रा में एक जगह सुगन को प्यास लगी । उसने अपने थर्मस में से थोड़ा-सा जल निकालकर सुबन्धु को दिया, "लो, पानी पियो ।"

"मुझे प्यास नहीं है ।"

"पर मुझे तो है । तुम थोड़ा-सा पी लो — फिर बाकी मैं पीऊंगी ।"

"ये बेकार की बातें हैं — मूर्खतापूर्ण भावुकता ! तुम जूठा पानी क्यों पीओगी ?"

"मुझे अच्छा लगता है ।"

"पर यह सब अब मुझे नहीं अच्छा लगता ।"

सुगन ने कटाक्ष से सुबन्धु को देखा । सुबन्धु चुपचाप चल रहा था । सुगन रूक गयी । यात्रा बढ़ रही थी । वह पीछे चली गयी । साथ सुबन्धु भी ।

"यह क्या नखरे कर रही हो ? सीधे चलती हो कि ।।। !"

"अपने हाथ से मुझे यह पानी पिलाओ आज ।"

सुबन्धु ने गुस्सा पीकर पानी पिला दिया । सुगन चहकती हुई चल पड़ी । तब सुबन्धु बोला, "मैंने इस तरह की मूर्खताएं बहुत देखी हैं ।"

"की भी हैं न !"

"बहुत । तभी तो इस गति को पहुंचा ।"

सुगन को पता है कि सुबन्धु के जीवन में एक बहुत बड़ी प्रेम-घटना घट चुकी है । उसने सुगन को उस विषय में कुछ बता भी रखा है । फिर किस तरह क्या बताया है — यह सुबन्धु ही जाने । अर्थात् सुगन को पता है कि सुबन्धु जब बनारस यूनिवर्सिटी से एम0ए0 पास कर चुका, तभी बनारस में एक गुजराती लड़की से उसका प्रेम हुआ था । दोनों का ब्याह निश्चित हो गया, तभी उस लड़की का देहान्त हो गया — नाम था उसका मोहिनी ।

पीछे, बहुत पीछे सुगन आज सुबन्धु का हाथ पकड़े हुए यात्रा में चल रही है । प्रसन्न, बहुत ही उल्लसित !

वह बोली, "इस भूमि पर इसी तरह राधा अपने कृष्ण के साथ चली होंगी ।"

"अगर चली भी हों, तो भी राधा तुम्हारी तरह विवाहिता नहीं थीं ।"

सुगन ने भी वैसा ही उत्तर दिया, "और वह कृष्ण भी तुम्हारी तरह विधुर न थे ।"

सुबन्धु को हंसी आ गयी, "वाह ! बिना ब्याह के ही विधुर ! — और वह ब्याही राधिका !"

सुबन्धु सुगन को कहीं इस तरह आहत करना चाह रहा था कि वह चुप हो जाये । उसका इस तरह चहकना उसे कतई अच्छा नहीं लग रहा था । सुगन बड़ी मस्त लड़की थी । सुबन्धु इस तरह से क्या, किसी तरह से भी उसे आहत नहीं कर पाता । वह सब कुछ हंसी में बहा देती है । सुगन आज भी हंस-हंसकर कहने लगी, “हां, राधा ब्याहता थी । ब्याहता होकर कृष्ण से प्यार किया था । प्यार क्या एक ही होता है ! बहुत तरह का प्यार होता है . . . हो सकता है । प्यार बंटता हुआ भी हो सकता है । छल में भी प्यार होता है । कभी-कभी कुल्टा का प्यार सौ-सौ सुहागिनों से भी बढ़कर होता है । हर प्यार एक अलग मन्वन्तर हैं, जीवन है, वह चाहे जिस रूप में पैदा हुआ हो ! चाहे जिससे हो, चाहे जिसके भी लिए हो । और वह सब पुण्य है . . . शिव है वही !

यात्रा चल रही है । सुगन भीड़ में अब खो गयी है । पतितराम के कन्धे पर वह बच्चा बैठा चल रहा है । दायीं ओर बच्चे की मां जैजैवन्ती चल रही है । सुगन अब जैजैवन्ती से परिचित हो चुकी है ।

यह कहती है, “कोई गीत गाती चलो, बहूरानी !”

सुगन बोलती है, “गीत तो बहुत भीतर है ; बाहर तक वह इस तरह आता ही नहीं । क्या करूं !”

“अच्छा, कोई राधा-कृष्ण की कथा ही कहो !”

सुगन एक प्रचलित दंत-कथा कह रही है, “एक राक्षस था । वह हजारों वर्ष तक विष्णु भगवान की तपस्या करता रहा । हारकर विष्णु भगवान को दर्शन देना पड़ा ।”

‘बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ? जो वर तुम मांगो, वह मिलेगा ।’

‘मिलेगा ?’

‘हां, मिलेगा ।’

‘तो सुनो विष्णु भगवान ! मैं तुम्हारी पत्नी लक्ष्मीजी को अपनी पत्नी के रूप में चाहता हूँ ।’

‘लक्ष्मीजी और तुम ? तुम उनसे ब्याह करोगे ?’ हां, क्यों नहीं महाराज, इसलिए तो मैंने इतनी घोर तपस्या की है !’ ठीक है . . . मंजूर !’ तो विष्णु भगवान कृष्ण के रूप में पैदा हुए और लक्ष्मीजी राधा के रूप में पैदा हुईं, एक कमल के पराग में । वही कमल बहते-बहते मिला राजा वृषभानु को । उनकी पत्नी ने पाला — मां से भी बढ़कर प्यार-दुलार से । पर ताज्जुब की बात यह है कि राधा की अब तक आंख ही नहीं खुलती थी । कमल जैसी सुन्दर आंखें — पर दोनों बंद ! मां-बाप ने सोचा — राधा की कहीं झटपट षादी कर दो, वरना आगे मुष्किल होगी । और इस तरह उस राधा की षादी हो गयी उसी वर-प्राप्त आदमी से । राधा जैसे ही सयानी हो जायेंगी, वैसे ही ससुराल भेज दी जायेंगी । राधा का दुल्हा मान गया । ठीक बात है — जब राधा बड़ी होगी, तभी न गौना होगा !

पर राधा को आंखिन न खुलै — बड़ी मुसीबत की बात । एक दिन अपनी यही विपत्ति लिए राधा की मां, जषोदा जी के पास गयीं । जषोदा जी को बहुतै दुख हुआ । जषोदा जी राधा को देखने आयीं । बिटिया के रंगरूप देखिकै जषोदा जी तो हाय-हाय करने लगीं । पर कछू उपाय तो नाहीं न ! रोय-धोय कै चली आयीं । एक दिन ऐसा हुआ कि जषोदा के संग कृष्ण भी खेलते-कूदते राधा के यहां पहुंच गये । ये दोनों औरतें तो आपस में बातचीत करने लगीं, उधर कृष्ण जी पहुंचे राधा के पास । राधा की आंख फौरन खुल गयी । दोनों हंस-हंसकर खेलने लगे एक साथ । दोनों माताएं आश्चर्यचकित !”

सुबन्धु भी सुगन की इस कथा को सुन रहा है। पतितराम भी। और लोग भी। सब श्रोता मन्त्रमुग्ध हैं। केवल सुबन्धु के होठों पर हंसी फूटना चाह रही है। उसकी चाल में तेजी आ जाती है। अब वह सुगन की और बात नहीं सुनना चाहता। सुबन्धु सुगन को पीछे छोड़ काफी आगे आ गया है। सहसा धीरे से कोई पुकारता है।

षायद हिरनमयी है।

हिरन पूछती है, "सुबन्धु, तुमको क्या हो गया?"

"कुछ भी तो नहीं। बहुत आनन्द से हूँ अपनी जगह।"

"तुम इस तरह झूठ क्यों बोलने लगे? तुमने उस दिन सुगन से यह क्या कहा कि मैं तुम्हारे एक दोस्त की बहन हूँ। जिन दिनों तुम कलकत्ता में तपेदिक से बीमार थे, तुमने मुझसे पांच सौ रुपये उधार लिये थे। वह तुम नहीं दे सके, तभी तुम यहां से भाग रहे थे?"

"क्योंकि मुझे कुछ उत्तर तो देना था।"

"पर ऐसा उत्तर...!"

"बहुत बढ़िया उत्तर था यह — मुफ्त में पांच सौ रुपये भी मिल गये।"

"सुबन्धु!"

हिरन की आंखें सुबन्धु पर जम गयी थीं। सुबन्धु निर्विकार भाव से नीचे देखता हुआ चलता जा रहा है।

हिरन ने फिर कहा, "और तुमने सुगन से यह क्या कह रखा है कि एक गुजराती लड़की का ब्याह तय था। वह एकाएक मर गयी। तभी तुम्हें टी0बी0 हुई थी।"

'बन्द करो ये बातें! चुपचाप अपने पति के संग धर्मयात्रा करो।

मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं तुम्हारा फिर कभी मुंह देखूंगा। या मुझे कभी देखना पड़ेगा।"

हिरन बड़ी देर तक चुप रही। यन्त्रवत मौन चलती रही। सुबन्धु जैसे अपनी घोर खामोशी में भी चिल्लाकर कुछ कहता जा रहा हो।

हिरन ने धीरे से कहा, "तुम मुझसे घृणा करते हो?"

"नहीं। कुछ भी नहीं करता! दूर-दूर से भी कहीं कुछ नहीं!"

"तुम सुगन को प्यार करते हो न?"

सुबन्धु का मुख तमतमा आया, "प्रेम! मैं अब भी किसी से प्रेम करूंगा?"

"पर सुगन तो प्रेम करती है।"

"वह मूर्ख है — जैसे मैं था कभी!"

"तुम मूर्ख थे! यह सब क्या कह रहे हो तुम?"

सुबन्धु अब एक शब्द भी हिरन से नहीं बोलना चाहता था। वह भीड़ में रूक गया। यात्रा बढ़ती रही। सुबन्धु पीछे चलने लगा।

बहुत पीछे।

पतितराम के कन्धे पर बहंगी झूल रही है । राहुल पांव-पांव चल रहा है, पर बहुत धीरे-धीरे । पतितराम उसी षिषु के साथ ही साथ चल रहा है । जैजैवन्ती पतितराम से आज कह रही है, “मेरे पति पोस्टमास्टर थे । सात ही वर्ष कुल हुए थे ब्याह को । दो ही दिन बुखार आया, तीसरे दिन बात करते स्वर्ग ... !”

पतितराम ने दाएं कन्धे से बहंगी बाएं पर बदल ली । राहुल ने अब मां की अंगुली पकड़ रखी है ... “उनके मरने के बाद जो कुछ सरकार से मिला, उस पर जैसे सब कोई टूट पड़े । ससुराल-नैहर, सबका मुझ पर अधिकार — पर मेरा अधिकार किसी पर भी नहीं । सब कुछ छिन-झपटकर बराबर । इतनी बड़ी जिन्दगी कैसे चलेगी, कैसे सब निभेगा ? अपनी चिन्ता उतनी नहीं है मुझे, जितनी इस बच्चे की है । सोचती हूं इसी के साथ अपनी जिन्दगी काट दूंगी । पर इसकी जिन्दगी ... ! चारों ओर वही रूपया, वही धन, आंख फाड़े देखता रहता है । ऊपर से कोई अपना नहीं ।”

पतितराम कहता है, “तुम दो-चार दर्जा पढ़ी तो हा !”

“गांव में ब्राह्मण की लड़की जितना पढ़-लिख सकती है, उतना ही ... वही रामायण का पाठ और चिट्ठी-पत्री तक की लिखावट ।”

“आगे दस दर्जा पढ़ डालो । वही अपना होगा । साथ रहेगा । राहुल तो पढ़ेगा ही । खूब पढ़ेगा । फिर मां-बेटा ...”
“पतितराम आगे पता नहीं क्या कहने जा रहा था ! षेष बात उसके मुंह पर रंग की तरह पुत गयी ।

पतितराम बार-बार अंगोछे से अपना मुंह पोंछने लगा । जैजैवन्ती बोली, “तेरे बालबच्चे नहीं हैं क्या ?”

“कोई नहीं ।”

“फिर किसके लिए इतनी मुसीबत सह रहे हो ?”

“अपनी अकेली जिन्दगी क्या कम मुसीबत है !”

और इस तरह धीरे-धीरे जैजैवन्ती पतितराम के विषय में पूछने लगी । वह बहुत संभल-संभलकर बताने लगा । पर वह सत्य नहीं कि वैरागियों में से वह इस तरह भाग निकला है । इससे पहले और बाद की जिन्दगी के बारे में वह बताता रहा । उसे वह सब आज जैजैवन्ती को बताने में बहुत अच्छा लग रहा है । वह जब प्रश्न के भीतर से प्रश्न उठाती, तो पतितराम को लगता कि वह अपने-आप को छू रहा है । वह हर जवाब के बाद अंगोछे से अपना मुंह पोंछ लेता । फिर वही मुंह उठाकर जैजैवन्ती की ओर निहारने लगता ।

एक दिन सुबन्धु ने पतितराम से कहा था कि जो अकेले कहीं से भागता है, उसे हमेषा अकेले भागना पड़ता है । क्योंकि उस अकेले से कहीं कोई क्रान्ति या सुधार नहीं होता । उल्टे नुकसान सिर्फ उस अकेले का ही होता है । षेष उसके चारों ओर की दुनिया उस पर हंसती रह जाती है । पतितराम जब किसी से बात करता है — विशेषकर अपने बारे में, तब वह जरूर उस सुननेवाले का मुंह बार-बार देखता है कि वह हंस तो नहीं रहा है । पतितराम जब जैजैवन्ती का मुंह निहारता, तब कभी-कभी वह उसे टोक देती कि तुम इस तरह मेरा मुंह क्यों निहारते हो ?

राहुल ने चलते-चलते थककर पतितराम की ओर अपने नन्हे-नन्हे हाथ उठाये । पतितराम ने उसे अपने कन्धे पर उठा लिया ।

पीछे से सुबन्धु हंसा । बड़ी मर्मभेदी हंसी । पतितराम तपाक से बोला, “अपने पर हंस रहे हो बाबू !”

“नहीं, तुम पर हंस रहा हूँ !”

“कभी अपने पर भी हंसती हो ?”

“पहले हंसता था । अब सिर्फ दूसरों पर हंसता हूँ ।”

“यह अन्याय नहीं है ?”

“न्याय कहां है, जो तुम अन्याय की बात कर रहे हो ?”

“क्योंकि तुम पर न्याय नहीं हुआ, इसीलिए ? मैं पूछता हूँ – तुमने क्या न्याय किया ? ... मांगनेवाला ही सदा उदास रहता है, हां ! सोचो, तुमने कब किया ! कितना दिया !”

“यह तुम अपने से पूछ रहे हो कि मुझसे ?”

“अपने से पूछ रहा हूँ, तभी तो तुम्हें इस तरह सुनायी दे रहा है ।”

सुबन्धु ने डांट दिया, “चुपचाप अपना बोझ ढोता है कि ... !”

पतितराम हंसा, “बाबू, मैं तो उसे कन्धे पर ढो रहा हूँ – पर तुम जो ढो रहे हो उसे कौन संभालेगा ?”

सुबन्धु चुप रह गया । उसने पतितराम का मुंह बन्द करना चाहा था पर चोट अन्त में सुबन्धु को ही लगी । सचमुच वह जो ढो रहा है – मन, प्राण और माथे पर, उसे कौन संभालेगा ? किससे कहेगा, कि मेरे बोझ को जरा नीचे उतार लो । मैं थोड़ा सुस्ताना चाहता हूँ ।

मरन रे तुहूँ मोर ष्याम समान

मेघ करन तुम, मेघ जटाजुट,

रक्त कमल कर रक्त अधर पुट

ताप विमोचन करूनकोर तब

मृत्यु अमृत करै दान ... मरने रे ...

हिरनमयी गा रही है । अकेले गाती चल रही है । कौन उसके सुर—में—सुर मिलाये ? ‘मरन रे तुहूँ मोर ष्याम समान !’ सुबन्धु सुनता है । उसे भी याद थी यह भानुसिंह की पदावली । पहली बार इसी हिरन ने ही गाकर सुनाया था और उसी क्षण सुबन्धु को सारा—का—सारा याद हो गया था ।

यह बात आगरा की है । मथुरा से तब हिरन वहां एल0 टी0 करने आयी थी ।

वहां सुबन्धु हिरनमयी से मिलने हर सप्ताह जाता था । हिरन को वह दो बार अपनी जन्मभूमि ले गया था । हिरन और सुबन्धु ताजमहल देखने गये थे । पूर्णमासी की रात थी वह । हिरन सुबन्धु का हाथ पकड़े बैठी थी ।

हिरन ने कहा, “कुछ बात करो, सुबन्धु !”

दोनों बात करते रहे ।

वहां तब सुबन्धु ने सामने बैठकर कहा था, “तुमसे दूर मैं एक छन नहीं रह पाता । तुम मेरे संग रहोगी तो मैं कुछ बहुत बड़ी रचना कर सकूंगा ।” हिरनमयी ने और जोर से सुबन्धु का हाथ पकड़ लिया था । पर उसके मुंह से कुछ नहीं फूटा था ।

हिरनमयी फफककर रो पड़ी थी । रोती रह गयी थी । आगरा से थोड़ी देर बाद फिर एक छोटा-सा कस्बा । वहीं सुबन्धु को मिलाया था हिरन ने उस लड़की से । “सुबन्धु , तुम इससे ब्याह कर लो । मैंने सब बातें तय कर ली हैं । ”

“सब बातें !”

सुबन्धु के मुंह से पहली बार वहां खून आया था । उसे याद है — हिरनमयी उसे लिए हुए दिल्ली आयी थी । वहां डॉक्टर ने तपेदिक का पूरा चार्ट खोलकर दिखाया था । हिरनमयी बहुत तड़पी थी । सुबन्धु बिलकुल सहज था ‘‘‘ जैसे यह उसकी स्वाभाविक परिणति थी और इसे वह बहुत पहले से जानता था । वहीं दिल्ली के टी0 बी0 अस्पताल में भर्ती कर हिरनमयी स्वयं मथुरा लौट आयी ।

स्वस्थ होते ही सुबन्धु वापस उसी नगर आया था । वहां से हिरनमयी गायब थी । कहीं कुछ पता नहीं । लेडी प्रिंसिपल ने सिर्फ यही बताया कि हिरनमयी ने त्यागपत्र दे दिया । कहां गयी हिरनमयी ? क्यों इस तरह चली गयी ? सुबन्धु मानो पागल हो जाएगा ।

यात्रा चल रही है । अब आज का पड़ावतीर्थ बिलकुल समीप है । कुसुम सरोवर से चन्द्रसरोवर । लुंजू पटेल, राधाबाई से कुब्जा की कथा कह रहा है, “कुब्जा कंस की दासी थी । चन्दन भरी थाली लिये हुए वह जा रही थी तभी कृष्ण ने उसे देखा था । कुब्जा ने वह चन्दन कृष्ण के शरीर में लगाया था । उसी स्पर्श से कुब्जा का सारा शरीर स्वस्थ और सहज हुआ था । फिर रूप, गुण और उदारतामय कामदेव से व्याप्त कुब्जा ने कृष्ण के दुपट्टे को खींचते हुए कहा था, ‘हे वीर, आइए, घर चलें । मैं अब आपको छोड़ नहीं सकती ।’

“तब कृष्ण ने उससे कहा था, ‘हे अंगने ! मैं तेरे घर जरूर चलूंगा ।’ ”

“बड़े सुरहा थे श्रीकृष्ण भगवान !” राधाबाई ने लजाते हुए कहा ।

अजी, पूछो नहीं, बड़े मजाकिया थे वे ।”

चन्द्रसरोवर आ गया । मरन रे तुहूं मोर प्याम समान ‘‘‘ रात का पड़ाव और फिर कल की यात्रा जतीपुरा के लिए ‘‘‘

हिरनमयी भी कहीं खो गयी । सुबन्धु की सारी नींद गायब । भूख हराम । हिरन कलकत्ता में नहीं है, वह नाना-नाली के घर आयी ही नहीं । कोई चिट्ठी-पाती भी नहीं । कहां है वह नादिया जिला ? कहां है वह चैतन्य का नवद्वीप !

सारे बंगाल भर में हिन्दू-मुसलमान दंगे ।

सुबन्धु के हाथ में केवल एक बैग है । सारा शरीर बुखार से कांप रहा है । थूक के साथ मुंह से खून आता है । उस पर पूर्व बंगाल और जाड़े के दिन ! सुबन्धु अपनी कनपटी को मफलर से कसकर बांधे हुए है ।

सारी गाड़ियों में शरणार्थी भरे हुए हैं । हावड़ा और सियालदह स्टेशनों पर उन्हीं की तमाम भीड़ है । सुबन्धु पूर्वी बंगाल जाने वाली ट्रेन पर बैठता है ।

पुलिस अफसर पूछता है, "तुम कौन हो ?"

"मैं ! ... मैं भी शरणार्थी हूँ ।"

"कहां जाओगे ?"

"वापस, अपने घर - नवद्वीप !"

यह नवद्वीप है । चैतन्य की पुण्यभूमि ! हिरन कहां है ? कौन हो तुम ? कहां से आये ? हिरन के जमींदार पिता हैं यह ! ये तीन भाई हैं हिरन के ! - कानाई, बालाई और निताई अर्थात् कन्हैया (कृष्ण) , बलराम और नित्यानन्द ।

"तुम्हीं है जो उसके पीछे पड़ा है ? तुम्हीं है वह ... !"

सुबन्धु कोई प्रतिवाद नहीं करता । कोई सवाल-जवाब नहीं । सिर्फ पूछता है, "हिरनमयी कहां है ? "

"हिरनमयी का कोई पता नहीं ।"

सुबन्धु चैतन्य महाप्रभु के मंदिर के बरामदे में पड़ा है । बुखार एक क्षण भी नहीं उतरता । दूसरे दिन वहां के अनेक युवक एक गिरोह बनाकर मंदिर पर आये । सुबन्धु से बोले, "यदि तुम धर्म की रक्षा कर सकते हो तो हम हिरनमयी का पता तुम्हें बता देंगे ।"

"पर मैं क्या करूँ ! मैं ऐसा कोई वचन नहीं दे सकता !"

"अच्छा, तो तुम यहां हिन्दू संगठन पर भाषण दे सकते हो ?"

"कहां देना है ?"

"यहीं आस-पास के गांवों में जहां लोग मुसलमानों से बेहद डर गये हैं ।"

"अच्छा तो चलो !"

"हां, यह काम मैं कर सकता हूँ ।"

हर गांव में राधा-कृष्ण के मंदिर । हर गांव के बाहर राधा-कृष्ण का मन्दिर ! मुसलमान भी जहां कीर्तन करते, गाते-नाचते हैं । पर वहां तक दंगाईयों ने कृष्ण की बांसुरी तोड़ डाली है । राधा की मूर्ति से अब वे नफरत करने लगे हैं । सुबन्धु उन गांवों में संगठन पर भाषण दे रहा है,

"प्रेम ... प्रेम बहुत बड़ी चीज है । यही मनुष्य की महानता है । इसी के माध्यम से मनुष्य अपना आत्म-साक्षात्कार कर सकता है ।"

युवक दल के नेता हाथ उठाकर उसे रोक देते हैं, "बन्द करो, बन्दर ! यह क्या बकवास है ? संगठन के लिए वीरतापूर्ण, ओजपूर्ण अभिभाषण चलेगा, कुछ गीता, कुछ शिवाजी, राणा प्रताप और ' ' ' ' नहीं तो हम लोग तुम्हें हिरनमयी का पता नहीं देगा ।"

"ठीक !"

"चलो, अब दूसरे गांव में ।" एक गांव से दूसरे गांव । फूलमालाएं, स्वागत-भाषण, तालियां । लेकिन उसे होष नहीं कि मंच पर वह क्या कह रहा है । होष आया तब, जब क्रोधित जनता उसे नवद्वीप से निकाल रही थी ।

पास पैसा नहीं । शरीर में बल नहीं पर वह चलता गया । जैसे आज ब्रज की यह यात्रा चल रही है । सब लोग जैसे यहां कुछ तलाश रहे हैं, मिलन बिन्दु पर । वैसे ही सुबन्धु चला था । बीच में पद्मना नदी पार की, शरणार्थी बनकर । ग्वालदो से नारायणगंज घाट । तब आया था वह विक्रमगंज । वह कंकाल-सा कस्बा । मच्छरों से भरा हुआ । सारे स्कूल-कॉलेजों में उसने छान डाला, पर हिरनमयी का कहीं कोई पता नहीं ।

यात्रा चल रही है । जतीपुरा बहुत दूर नहीं है । पर यात्रा लम्बी है । यह दूरी, यह घुमाव इस मनुष्य ने ही पैदा किया है अपने चारों ओर ।

लुंजू पटेल राधाबाई से कह रहा है, "इस घुमावदार यात्रा में एक सीधा रास्ता है जिसे ज्ञानी लोग समझते हैं ।"

पर ज्ञानी न तो लुंजू पटेल है, न राधाबाई । इनकी पहुंच तो सिर्फ कथा तक है । फिर क्या हुआ कृष्ण का ? जैसे राजा परीक्षित श्री षुकदेव जी से पूछते थे भागवत में — हां, फिर क्या हुआ ?

लुंजू पटेल नाराज होता है राधाबाई पर, "सिर्फ कथा जानकर क्या करोगी ? यह तो जानो यह कथा कौन कह रहा है ? कौन उसे सुना रहा है ?"

"परीक्षित सुन रहे हैं ।"

"क्यों सुन रहे हैं ?"

राधाबाई चुप । लुंजू बताता है, "परीक्षित को षाप था, कि सातवें दिन उन्हें तक्षक सर्प डंसेगा । यही है श्रीमद्भागवत ! और इसे सुनने वाला हर कोई वही परीक्षित है । इसमें जिस कृष्ण की कथा कही गयी है, वह भी कहीं-कहीं परीक्षित ही है ।"

"यही परीक्षा लेने वाला कौन है ?"

"यही तो मैं नहीं जानता, राधाबाई !"

हिरनमयी के पति षुभ्रांशु ने लुंजू पटेल से कहा, "मैं बताऊं, यह परीक्षा लेने वाला कौन है ?"

"क्या आप हमारी बात सुन रहे थे ?"

"हां ।"

"भला बताइए, हमारी बात में भी क्या कोई तत्त्व है ?"

'तत्त्व है — क्योंकि उसमें एक प्रश्न है । यह परीक्षा लेने वाला कौन है ? वही काल ' ' ' ' जीवन इतिहास ' ' ' ' !"

"इस परीक्षा से क्या होगा ?" लुंजू पटेल पूछता है ।

“जीवन आगे बढ़ेगा । इतिहास आगे बढ़ेगा ।”

“हम परीक्षितों का क्या होगा ?”

“इतिहास हमारे बीच से गुजर जायेगा । हम उसके सिर्फ माध्यम होंगे ।”

लुंजू पटेल रूक जाता है । उसका चेहरा तमतमा आता है, “चुप रहो ! मैं किसी का माध्यम नहीं बनना चाहता । मेरे लिए सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण मेरा जीवन है । मैं जितना जी रहा हूँ, उतना ही मैं हूँ । मैं इतिहास नहीं, मैं लुंजू पटेल हूँ । मैं जड़ मार्ग नहीं, मैं यात्री हूँ । मैं अपने-आपका परीक्षित हूँ ।”

“तो यहां तुम इस ब्रजयात्रा में क्यों आये ? किसलिए ?”

“अनुभूति के लिए !”

“उस अनुभूति से क्या होगा ?”

“तो उस इतिहास से क्या होगा ?”

षुभ्राषुं आश्चर्यचकित रह गया लुंजू पटेल की बात से । अनुभूति और इतिहास !... इतिहास में अनुभूति नहीं है । क्या ? तो क्या इस जड़यात्रा में अनुभूति है ? उसकी पत्नी हिरनमयी कहती है, “यह यात्रा अनुभूति की है — साक्षात्कार की ।” षुभ्राषुं के मुख पर व्यंग्य भाव तिरकर रह जाता है ।

“हूँ ! अनुभूति-यात्रा !”

“किस युग-काल की आवश्यकता और उपज थी यह वैष्णव भक्ति ?... चल आज तक रही है । कंकाल में अनुभूति !”

हिरनमयी षुभ्राषुं से कभी बहस नहीं करती । एक ओर सिर्फ तर्क है, केवल एकाकी विवेचना, दूसरी ओर है विष्वास और अनुभूति । पर दोनों के बीच कहीं कोई कटुता और दुख नहीं है । एक अजब सामंजस्य है दोनों के बीच । इतिहास से बड़ी अनुभूति है — यही अनुभूति कराना चाहती है हिरनमयी अपने पति को । पति पूरे जीवन की उसकी अजस्र धारा को एक विकासमान इतिहास के रूप में देखता है । हिरन उसे एक महान अनुभूति के रूप में देखकर जुड़ाती है । यही सामंजस्य है दोनों में । एक बुद्धि, एक हृदय । दोनों यहां एक साथ यात्रा कर रहे हैं । बुद्धि को इस यात्रा में एक थकन मिलती है, हृदय को इससे एक षान्ति, परितोष ।

पति ने यात्रा में आनेसे पहले हिरन से पूछा था, “यह यात्रा किसकी है ?”

हिरन ने बताया था, “मन की ।”

“यह मन क्या है ?” पति ने पूछा था ।

“जो जिया गया है, जो बराबर अपने-आपमें ही जिया जाता है । जीवन और पुनर्जीवन ! जिसमें आलम्बन और आश्रय दोनों एक हों वही अनुभूति है ।”

“वह अनुभूति क्या है ?”

“जो बताई नहीं जा सकती । जो सिर्फ अनुभव की जा सकती है ।”

हिरन उसे कभी नहीं बता सकी थी अपने पति को । जो उसके जीवन में घटा है — जो उसकी महिमा है, उसे वह कभी नहीं बता पायी थी । पर पति इतना जानता है कि कोई नन्हा-सा कृष्ण इसके भीतर बैठा हुआ सदा बांसुरी बजाता

है । वह जब भी दुःखी होती है, तब पहले कहीं उसी कृष्ण को चोट लगती है । इतना जानता है वह षुभ्रांषु । इसलिए वह कभी भी हिरन को दुखी नहीं बनाता । अपने बुद्धिपरक इतिहास—ज्ञान को वह तब फैंक देता है और तब वह उससे भी बड़े इतिहास को हिरन की आंखों में झलकता हुआ देखता है । यही सामंजस्य है उसका । तभी वह हिरन को इतना प्यार करता है । हिरन से भी ज्यादा हिरन के रहस्य को ।

एक दिन पति ने मजाक किया था, “तुम्हारे कृष्ण को तो बहेलिये ने तीर मारकर खत्म कर दिया था ।”

हिरन ने मुसकराकर उत्तर दिया था, “जीवन का हर यथार्थ जब हमें तीर से मारता है, तब वह घाव पहले उसी कृष्ण पर ही लगता है । उनके घाव कितने हैं — कितना बड़ा दर्द है उनका, यही सत्य हमारे दुख—दर्द के सहन करने की शक्ति और साहस देता है ।” हर चोट सुन्दर पर लगती है ।”

“फिर तो वह सुन्दर एक दिन कुरूप हो जाता होगा ?”

“नहीं, बीच में एक और सुन्दर जो है ।”

“वह क्या है ?”

हिरन ने पति को अपने अंक में भर लिया था । बोली थी, “वह मैं नहीं जानती, मेरे स्वामी ! मेरे प्राणनाथ ! मेरी पूजा ! मेरे गीत !”

ऐसे क्षण षुभ्रांषु को बार—बार अभिभूत कर लेते हैं । उसे तब लगता है कि — कितनी बड़ी है यह हिरनमयी । हिरनमयी कहती है, “जिसके बीच में यह सुन्दर नहीं होता, उसका अपना सुन्दर एक दिन कुरूप हो जाता है । वह तब मूल्यहीन होकर भटकता है, जैसे दावाग्नि लगे जंगल में मृग भागता—चीखता है और उसी आग में जलकर भस्म हो जाता है । मृग फिर भी भाग्यशाली है, जो उस दावाग्नि से जलता है । पर मनुष्य जो अपनी धुएं वाली आग से जलता है, वह कितना भयानक है ! एक आग से चिराग जलता है, उसी एक आग से मनुष्य अपने—आपको भस्म कर लेता है ।

“बीच में एक और सुन्दर है !”

यात्रा चल रही है । दोपहर का समय हो गया है । निर्मल आकाश में चमकता हुआ सूर्य । धूप बड़ी तेज हो आयी है । पतितराम के कन्धे पर वह षिषु सो गया है । पतितराम ने अपने अंगोछे से उसका सिर ढक लिया है ।

सुबन्धु के संग—संग वही सुगन चल रही है । सुगन के पति की चाल ठीक हो चली है । पति कहता है, “यह अतुल लाभ इस धर्मयात्रा से हुआ है ।” सुगन हंसकर कहती है, “नहीं उसी ‘बेरिन’ और ‘मेक्राबिन’ की सूइयों से ।”

सुगन बड़े भाव से सुबन्धु को निहारती है । उसके हाथ को बड़े ही कोमल स्पर्श से छू देती है । कहती है धीरे से, “यह यात्रा धर्म की नहीं, प्रेम की है ।”

“प्रेम में धर्म नहीं होता ?”

“नहीं ।”

“फिर क्या होता है ?”

“एक क्रान्ति . . . जिससे एक नये युग की सृष्टि होती है ; जिससे एक मनु की मृत्यु होती है, और दूसरे मनु का जन्म होता है । देखने वाले इसे प्रलय कहते हैं और प्रणयहीन, सुन्दरहीन षत-षत मनु-पुत्र तब अकारण ही उदास हो जाते हैं – हाय, यह प्रलय !”

सुबन्धु वहीं खड़ा रह गया । सुगन उससे आगे बढ़ने लगी, अजब स्वर में वह फिर बोली, “तभी हर नया प्यार एक नया मन्वन्तर होता है !”

सुबन्धु अपने भीतर की धुएं वाली आग से फिर एक नये सिर से जलने लगा । उसने अपने-आपसे पूछा, “वह मेरा क्या था ? मनु या मृत्यु ?”

यही प्रश्न उसने तब पद्या नदी को पार करते हुए पूछा था । फिर निराश पूर्वी बंगाल से विदा लेते हुए भी । हिरनमयी भागकर स्वयं विलुप्त हो गयी क्या ? पर वह मुझे मर जाने क्यों नहीं देती ? जब मैं बेहोष हो जाता हूँ , तब वह मेरे जलते माथे पर अपना चन्दन-सा हाथ रखकर क्यों भागती है ?

वह हावड़ा स्टेशन । पूर्वी बंगाली षरणार्थियों से खचाखच भरा हुआ । सबसे ज्यादा दर्शनीय षरणार्थी के रूप में सुबन्धु वहां हावड़ा प्लेटफार्म पर उतरा था । स्टेशन के बाहर एक तम्बू खिंचा हुआ था – उसमें लाषें पटी पड़ी थीं । लोग षमषान के कुत्तों की तरह लाषों की पहचान कर रहे थे । उनके बीच घूम-फिर रहे थे । चारों ओर अलग-अलग झण्डों में ‘रिलीफ सोसायटियां’ बनी खड़ी थीं । महासभा का षरणार्थी षिविर सबसे बड़ा था । सबको मुफ्त भोजन, वस्त्र और दवाइयां बांटी जा रही थीं । बड़े-बड़े नेता स्वयं घूम-घूमकर सबको सान्त्वना दे रहे थे । रोते हुए लुटे-मरे लोग । षव की वे भयानक कतारें ! सुबन्धु के भीतर का वह विक्षोभ तभी जाग पड़ा था । उसने अपने से कहा था, ‘मुझे मरना तो है ही . . . पर मैं अब इस तरह नहीं मरूंगा । जिन्होंने इन असहाय लोगों की यह दुर्दषा की है, उनको सुबन्धु क्षमा नहीं कर सकता ।’

और कलकत्ता के वे रक्तरंजित दिन ! और उनमें पागलों-सा घूमता हुआ सुबन्धु । बदला ! बदला ! बदला ! मगर किसका बदला ? किससे ? उसे कुछ समझ में नहीं आता था । दिल की धड़कन की गति बहुत तेज हो गयी थी । इतनी तेज कि उसकी चाल के साथ षरीर भी कांप रहा था । वह न लेट सकता था, न उठ सकता था, न चल सकता था । उसे लगा कि उसका अन्तिम समय आ गया । जोर से पुकारकर बोला, “हिरन ! क्या अब भेंट न होगी ?” एक दुकान से कुछ लोग उठकर आये, पूछने लगे, “क्या चाहिए ? किसे पुकार रहे हो ?”

“किसी को नहीं ।”

छुकान में लगे षीषे में अपना मुंह देखा । यह किसका अक्स है ? इतना अपरिचित चेहरा । वह पहचान नहीं सका । रातभर यही दषा रही । न नींद, न चैन, न ठीक से सांस । सुबन्धु को याद आया कि हिरनमयी के कुछ नातेदार यहीं हैं कलकत्ता में ।

उन्हें खबर दे । उनसे हिरन के बारे में पूछे । पर नहीं, उन लोगों ने तो हिरन की बदनामी की है, तभी वह उस तरह जबरन नवद्वीप बुला ली गयी थी । नहीं, नहीं ! दिल की गति भयानक है । यह कभी भी सहसा रुक जाने वाला है । मौत बिलकुल सामने खड़ी थी । उसकी आंख से सुबन्धु की आंख मिली हुई है । तभी उसे होष आया – हिरन की एक बुआ का लड़का यहीं है – थियेटर का मैंनेजर ।

और फिर वह सब भूल गया । कैसा बदला ? किसका बदला ? किसकी रक्षा ? किसका संगठन ? वह तो खुद बिखर रहा है । गुलाब के फूल की जैसे एक-एक पंखुड़ी बिखरती है । उसने आंख खोलकर देखा — फर्ष पर इधर-उधर खून के धब्बे बिखरे हैं । वह अपने हाथ से उन धब्बों को मिटाने लगा । उसका दिल धीरे-धीरे कहीं बहुत गहरे अन्धकार में डूब रहा है । उसी समय उसके सामने काले भूत की तरह एक आदमी आया । उसके दोनों हाथ में खून में डूबे हुए खंजर थे ।

“कौन हो तुम ?”

“जय महाकाली !” वह गरजा ।

“मेरा एक काम करोगे ?” सुबन्धु उसके रक्त सने हाथ थामकर कहता है, “मुझे तुम नरेन्द्र स्ववायर ले चलोगे ?”

हत्यारा कितना कोमल था ! कितना हमदर्द ! पहुंचाकर वह फिर भाग गया । उसके पीछे पुलिस पड़ी थी । बुआ के लड़के से सुबन्धु की भेंट हो गयी । हिरन के बारे में पूछा । उसने पता दिया और कहा, “हिरनमयी वहां पढ़ाती है ।” सुबन्धु की हृदयगति अक्स्मात् ठीक हो गयी । वह बच गया । उसे मरना नहीं है । सियालदह स्टेशन । गाड़ी पैसेजर थी । उसमें सारे क्लर्क बैठे थे । सब खाली हाथ । गाड़ी चली । सब डरे — भयभीत उसमें बैठे थे । गाड़ी गांवों के बीच से चली जा रही है — बांस और केले के जंगल से पटे हुए गांव । सुबह आठ बजे वहां पहुंच गया । सीधे कॉलेज गया ।

हिरनमयी मिल गयी । षाम का वक्त । कॉलेज सूना हो गया था । वे दोनों कॉलेज के मैदान में बैठे रोते रहे ।

“तुमने अपनी यह दषा क्यों बना डाली ?”

“तुमने यह दषा क्यों बना डाली ?”

“कारण तुम हो !”

वही एक प्रश्न दोनों ओर से । वही एक उत्तर दोनों के होंठों पर । क्षण मे क्षण वह अनन्त क्षण, वहीं मैदान में बीतता रहा । आंसू, सिर्फ आंसू । प्रश्न आंसू, उत्तर आंसू ।

“हमें मोह त्यागना होगा ।”

“हमें मोह त्यागना होगा ।”

“कहीं ब्याह कर लें ।”

“हां, कर लें ।”

“वर अनेक देखे, षादियां अनेक आर्यीं । पर कहीं मन नहीं होता ।”

“यह क्या हो गया ?”

वही प्रश्न । वही उलटकर उत्तर-प्रश्न । यह कौन-सी भाषा है ? यह जीवन कौन-सा है ?

सुबन्धु ने पूछा, “तुमने चिट्ठी क्यों नहीं दी ?”

“घरवालों की आज्ञा ! उनका भय !”

“मेरा भय जरा भी नहीं है तुम्हें ?”

“बिलकुल नहीं ।”

“हिरन, मैं मर जाऊंगा !”

हिरन ने बढ़कर सुबन्धु को अपने अंक में खींच लिया । दोनों बांहों में उसे बेतरह जकड़े हुए बैठी रही । सुबन्धु के माथे को वह बार-बार चूमती थी और थर-थर कांप उठती थी । सुबन्धु जैसे केले के वृक्ष में कहीं बहुत गहरे भीतर अपना मुंह गाड़े हुए हो । सुगन्धि और कोमलता । कोमलता और सुगन्धि ।

मैदान में बेतरह मच्छर लग रहे थे । पर दोनों उसी तरह वहां मूर्तिवत् बैठे रहे । न कोई बात, न चीत । उसके मुख पर से आंसू ढुलक-ढुलककर सुबन्धु के सिर पर गिर रहे थे ।

“तुम इस तरह क्यों रहे रही हो, हिरन ?”

“पता नहीं क्यों ?”

आधी रात से ज्यादा समय बीत गया । कॉलेज के नीचे अंधरा था । ऊपर दो-तीन कमरों में अभी तक बत्तियां जल रही थीं ।

सुबन्धु उठने लगा । हिरन ने उसे उठने न दिया । बोली, “मेरे अंक से आज तुम अपना सिर न हटाओ, सुबन्धु ।” सुबन्धु उसी अंक में माथा गड़ाये सामने झुके हुए आकाश को देख रहा है ।

हिरन को जैसे कोई सुध-बुध नहीं है । कन्धे से आंचल गिरकर घास पर फैला है । सुबन्धु को अंक में कसे हुए वह मानो अनन्तकाल तक उसी तरह बैठना चाहती है ।

सुबन्धु बताना चाहता है – वह किस तरह नवद्वीप गया, वह किस-किस तरह ...

हिरन उसे रोक देती है । वह किसी तरह का कोई भी विधन आज नहीं सह सकती । वह जैसे कोई महाराग छोड़े बैठी है, जिसमें सिर्फ मूर्च्छा है ... मात्र मूर्च्छा !

भुजपाषे तब लहो सम्बोधइ

आंखियात मझु आसब मोदइ

करि उपर तुझ रोदइ रोदइ

लुहूं नहिं बिसरबि, तुहूं नहिं छोड़बि ...

वह महाराग ... इस ब्रजयात्रा तक वही खिंचा है । वही, अबाध-राग ! पर तब से आज तक बहुत-बहुत वर्ष बीत गए हैं । जमुना और हुगली में बहुत-बहुत पानी बह गया है । इतना बड़ा इतिहास बीत गया है ।

इतना बड़ा अन्तराल !

सुबन्धु उस दिन रक्तरंजित कलकत्ता के फुटपाथ पर दुकान के आइने में अपने-आपको नहीं पहचान पा रहा था । आज इस यात्रा में वह हिरनमयी इस सुबन्धु को नहीं पहचान पा रही है । इतना परिवर्तन ! सिर्फ इतने वर्षों में ! इतना फर्क ...

बीसवीं शताब्दी की वह एक पूर्वषती ... और यह उत्तरषती ... ! कौन जानेगा इस इतिहास को ! इस महाराग की कोमल, पर कठोर प्रणयकथा को !

षुभ्राषुं बाबू तो साफ कहते हैं, “यह सारा ‘रोमांटिसिज्म’ बेकार है और विकार है ।

इतिहास इसकी परवाह नहीं करता । वह इन आंसुओं और आंकों की सुने, तो वह एक जगह उसी दलदल में फंसा रह जायेगा । इसीलिए इतिहास का रथ नहीं होता, इतिहास का होता है चक्र । इसलिए इन रोमांटिक प्रेमियों को चाहिए कि ये लोग अपनी जगह चुपचाप खड़े हुए उस बड़े इतिहास-चक्र की प्रतीक्षा करें ।”

“तो हम मनुष्य नहीं, प्रतीक्षा हैं क्या ?” हिरन हंस पड़ती है अपने पति पर ।

“और क्या, अभी मनुष्य का जीवन पुरु कहां हुआ है ?”

“कब पुरु होगा ?”

“अभी देर है । जब मनुष्य की सारी भावुकता समाप्त हो जायेगी । जब वह अपने भीतर की अन्ध-गुफा के बाहर निकलकर केवल आर्थिक संघर्ष में मददगार होगा । जब वह आत्मानुभूति के पचड़े से मुक्त होकर एक सामूहिक प्रतिरोध की आवश्यकता को समझने लगेगा ।”

हिरनमयी हंस पड़ती है । वह एक गीत गाने लगती है, जिसका भाव है कि हमारे इस जीवन का कोई महत्त्व नहीं है क्या ? हम तो इसी के भोक्ता हैं । तुम्हारे लिए यह सारा अर्थहीन है ? पर हमारे लिए तो सारा अर्थ यही है — यही है सब कुछ । हम तुम्हारे उस महाचक्र को देखने नहीं आ सकेंगे । हमारा जिया हुआ ही हमारे साथ होगा । जो सुन्दर है, कोमल और अप्रतिम है, जो बिलकुल मौन और अकथ्य है — जिसका कोई इतिहास नहीं होगा, जिसे इतिहास ने कभी आंख उठाकर देखा भी नहीं, हम तो वही हैं । वहीं हैं हम !

बीसवीं शताब्दी की वह पूर्वषती कॉलेज के उस सूने मैदान में हिरनमयी सुबन्धु को अपने अंक में बांधे हुए चुप खड़ी है । आंचल अब भी नीचे जमीन पर गिरा है । उस दिन, उस घड़ी, उस क्षण का वह इतिहास कौन जानेगा ? उत्तरषती के लोग तो सिर्फ इतिहास जानेंगे । किसी तिकड़मी नेता का इतिहास, किसी निरंकुष आदमी का इतिहास । उसके सारे भाषण, सारे लेख, सारे चित्र छपकर सबके बीच बिखेर दिये जाएंगे । वही तब इतिहास होगा ।

उस सूने मैदान में चन्द्रमा की रोषनी नहीं थी । पर उससे बड़ी कोई रोषनी थी — दर्द की विरह की । विवशता की । सहन करने की ।

हिरनमयी मूर्तिवत् खड़ी थी । साक्षात् हिरनमयी, अपने-आपमें सम्पूर्ण, व्यक्त । और उसकी महिमा के सामने सुबन्धु का माथा झुका था । हिरन का वक्ष सुबन्धु के माथे से टिका था, और वह उसके कोमल भार से अपनी अन्तरात्मा को छू रहा था ।

“जीवन की सार्थकता क्या है, सुबन्धु ?”

सुबन्धु हिरन की बात को दुहराता है, “किसी को दे देना ।”

पर आज हिरन एक नया प्रश्न करती है, “किन्तु जब वह उससे अस्वीकार कर दिया जाये तो ? फिर इस जीवन की सार्थकता क्या है ?”

“यह प्रश्न तुम मुझ से मत करो ।”

“क्यों ?”

“इससे मेरा कहीं अपमान होता है ।”

हिरन चुप हो गयी । वह जैसे प्रश्न का मर्म और उसके उत्तर का अर्थ दोनों समझ गयी । बड़ी देर बाद बोली, “पर किसी को कोई सिर्फ देने के लिए दे दे तो ? यह क्या सार्थकता नहीं है ?”

सुबन्धु इस प्रश्न को कत्तई नहीं समझ सका । इसका आशय भी नहीं । ठीक उसी तरह जैसे आज सुबन्धु यह नहीं समझ पा रहा है कि हिरनमयी अपने पति के साथ इस ब्रज-यात्रा में क्यों आयी है ? वह खुद क्यों आया है, इसे वह खूब समझ रहा है । पर वह और कुछ नहीं समझ पा रहा है ।

यद्यपि आज की बात ही और है । सुबन्धु अब कुछ नहीं समझना चाहता । वह केवल अपना अस्तित्व जानता है । और शेष सब को बकवास और बेईमान समझता है । तभी आज वह हिरनमयी इस सुबन्धु को नहीं पहचान पा रही है । वह सिर्फ सुबन्धु को जान रही है । पहचानना उसके लिए आज दूभर हो रहा है ।

उस दिन ‘‘‘ उस पूर्वषती में ‘‘‘ हिरनमयी ने सुबन्धु से वह प्रश्न किया था । ‘सिर्फ देने के लिए देना’ का प्रश्न ।

तब अन्त में हिरनमयी ने प्रश्न की कैफियत बताई थी । उस नवद्वीप में एक अजब घटना घटी थी । उसके पिताजी उसे खींचकर ले आये थे नवद्वीप में । वहां उसके बड़े भाई ने उसे मारा था । अपशब्द कहे थे । घर से निकाल देने की गाली दी थी । हिरनमयी खुद निकली थी तब उस नवद्वीप से । उसने चैतन्य महाप्रभु को गाली नहीं दी थी, इसी का आज उसे सन्तोष है, वरना वह पागल हो गयी थी । तब वह भागी थी ढाका,

पद्मना नदी में छोटी-सी नाव पर घूमती फिरी थी । वह गयी थी विक्रमागंज । फिर ग्वालदो और नारायणगंज । और भी दूर ब्रह्मपुत्र में कूदने । पर वह बच निकली थी किसी बड़े जीवन की सुधि में ।

फिर वह जीवन में लौटी थी । उस कस्बे का भी नाम उसे आज याद नहीं है । उस पुरुष की भी याद नहीं । पर एकाएक वह पुरुष उसके जीवन में कूद पड़ा था । उसे कॉलेज में नौकरी करनी थी । कॉलेज का वह पुरुष मैनेजर था । उसी को उसने दे दिया था । “सुबन्धु ! तुम समझते हो मैं चरित्रवान हूँ, मैं पावन हूँ, पवित्र हूँ, नहीं, मैं इस दुनिया की सबसे निर्बलतम नारी से भी ज्यादा निर्बल हूँ ‘‘‘ ”

हिरन फिर वही प्रश्न दुहराती हैं, “देने के लिए सिर्फ दे देना, यह कैसी सार्थकता है ?”

सुबन्धु उसके भुजपाश से अलग होकर हिरन को निहारने लगा । चारों ओर अन्धकार घिरा था । सुबन्धु निस्तेज खड़ा था ।

हिरन को हंसी आ गयी थी, “चरित्रहीन होकर ही चरित्र जाना जा सकता है । पर प्रेमहीन होकर इस जीवन को नहीं जाना जा सकता ।”

6

जतीपुरा में कल रात रासधारी लीला हुई थी । गौचारन लीला । समाजी गायक ने लीला में एक अद्भुत राग गाया था — राजगजंगलासिंध ।

न्यारी करो प्रभु अपनी गैयां ।

नहिन बनत लाल हम तुमसों, कहा भयो दस गैयां अधिकैया ।

ना हम चाकर नन्दबबा के, ना तुम हमरे नाथ गुसैया ।

ठाकुरजी यषोदा मां से कहते हैं कि वह गौचारन के लिए जायेंगे । मां उन्हें मना करती है । कृष्ण अब बड़े हो गये हैं । उसके सभी दोस्त-सखा सुबल हैं, श्रीदामा, अर्जुन, भोज, तोस, मधुमंगल और दाऊभैया । नन्दबाबा आते हैं । यषोदा उनसे कहती है, "महरि, आज लाला गैया चरायवै की हठ करि रह्यो है ।" नन्दमहरि भी मना करते हैं । कृष्ण का हठ बढ़ जाता है । फिर नन्द के गुरुमहाराज गर्गाचार्य आते हैं । वे कहते हैं, "कृष्ण पहले वृषभान जी के घर की चौखट की पूजा करें, फिर गैया चरायवै जाय सकै हैं ।"

रासधारी में तब श्रीराधा कृपाकटाक्ष की लीला हुई थी । कृष्ण ने राधा के चरन की पूजा की थी । और तब आरती-गान हुआ था : "मुनीन्द्र वृन्द वन्दिते, त्रिलोक षोक हारिनी, प्रसन्न वक्रपंकजें, निकुंज भू विलासिनी । ब्रजेन्द्र भानु नन्दिनी, ब्रजेन्द्र सूनुसंगते । नितम्बविलम्बलम्बमान पुण्यमेखलागुण, प्रषस्तरलकिकिणी कलापमध्यमंजुले ।"

फिर सब ग्वालबाल गौचारन के लिए वन जाते हैं । आगे-आगे कृष्ण बलदाऊ, पीछे भोज, तोस, सुबल, श्रीदामा, रैंहा, पैदा, मना और मन्सुखा ।

मन्सुखा जोकर है, 'कॉमेडियन' । वह दोनों हाथ उठाकर चिल्लाता है, "अरे, कहां हैं सारे, आये आये ! हीयो हीयो कारी काजर धौरी घूमर रंग गुलाबी, चटकन मटकन, चली आमन दे नन्द ग्राम बरसाने पे हैं कै । पीमन दें पानी, लैन दें झकोरा ।"

बड़ा ही रंग जमा था कल जतीपुरा में । पतितराम के मुंह से निकल गया था, "रासधारी नहीं पोंपलीला ।" आसपास के लोगों ने सुन लिया था । मारने दौड़े थे पतितराम को । पतितराम हंसता हुआ सुबन्धु से पूछता है, "आपको जतीपुरा की रासधारी लीला कैसी लगी ?"

"मुझे क्या लगती ? मुझसे क्या मतलब ? मैं कहां देखता हूँ ?"

केवल - प्रण ।

प्रण नहीं मेरी बात सुनो !

हिरनमयी कह रही है, सुबन्धु सुन रहा है । जीवन की सार्थकता की बात नहीं, केवल जीवन की बात, "तुम्हें कहीं कुछ काम करना चाहिए, सुबन्धु ! वह काम जो तुम्हें बांधे रखे ।"

"मुझे तुम बांधे रखती हो ।"

'यह सिर्फ बन्धन है - जहां हम धीरे-धीरे छोटे लगने लगेंगे ।'

"मैं कहीं से भी बड़ा नहीं बनना चाहता । सिर्फ तुम्हारे संग जीना चाहता हूँ ।"

"सिर्फ साथ ही रहकर जिया जा सकता है क्या ? मैं जिस पर न्योछावर थी, मैं उसके साथ हूँ क्या ? वे साथ हैं क्या ? तुम अब तक मेरे साथ थे क्या ? बोलो, कौन किसके साथ है ?"

हिरनमयी की वह प्रणभरी आंख सुबन्धु को आज फिर याद आ रही है । सुबन्धु अपना ध्यान उधर से हटा लेना चाहता है । उन आंखों में प्रण का रक्त धुल आया है ।

उस दिन भी – उस गर्ल्स कॉलेज के मैदान से भी हटते समय – नहीं-नहीं, विदा लेते समय, सुबन्धु का हाथ पीछे से हिरनमयी ने पकड़ लिया था, “तुम जाकर कुछ काम करना, सुबन्धु !”

“मैं कोई काम करने लायक हूँ क्या ?”

“काम करना षुरु करोगे, तो काम करने लायक हो जाओगे ।”

सुबन्धु वहां से सीधे पटना आया था । सेवा षिविर का दफ्तर स्टेशन से कुछ दूरी पर था । सुबन्धु दफ्तर का मंत्री हो गया । वहां वह लोकप्रिय भी हुआ । वहीं सुबन्धु की भेंट हुई थी ठाकुर महाराज से । श्री श्री श्री ठाकुर महाराज पूर्व बंगाल से भागकर आये थे यहां ! तब से ठाकुर ने पूजा-भजन का नाम नहीं लिया था । न लेने की इच्छा ही हो रही थी । पावना जिले में हिन्दू-मुसलमानों को आपस में जो कट मरते देखा था – वही सब तब से उनके दिमाग में छाया रहता है ।

एक षरणार्थी कैम्प था – पटना से दूर – वैद्यनाथ धाम – देवधर । गिरीडीह स्टेशन के पास । एक हजार व्यक्ति उस कैम्प में रह रहे थे । हिरनमयी ने कहा था, “सुबन्धु, कुछ काम करना ।” सुबन्धु उन षरणार्थियों के बीच जाकर काम करने लगा ।

लेकिन क्या उससे काम होता था ? षाम को किसी परिवार में बैठ जाता और उनके साथ क्या अत्याचार हुआ इसके किस्से सुनता । लेकिन भयानक-से-भयानक, वीभत्स-से-वीभत्स अमानुषिकता का विवरण सुनकर न उसे दया उपतजी, न क्रोध ! केवल अन्दर एक पाषविक उल्लास और एक दिन हिरन की याद आयी और वह चल पड़ा । साथ में हिरन के लिए दो कीमती साड़ियां ले गया था । वहां पहली बार – इतने दिनों बाद हिरन ने कहा, “सुबन्धु ! एक बार दिया हुआ मन क्या फिर किसी और को दिया जाता है ?”

सुबन्धु का मुंह गुस्से से लाल हो गया । हिरन ने बार-बार यही बात चलाई । तब सुबन्धु अपने आपे से बाहर हो गया ।

हिरन को हंसी आ गयी ।

तब उसी हंसते हुए मुख पर सुबन्धु ने भरपूर हाथ से मारा था । हिरन रोयी नहीं । उसके मुख पर वह हंसी बनी रही । तब सुबन्धु ने उसके सामने अपना मुंह पीट लिया ।

और सुबन्धु पटना चला आया था । पटना से देवधर । वहां कैम्प में लोगों की संख्या अब बहुत बढ़ गयी थी । अलग-अलग परिवार षिविर में रह रहे थे । उसने वहां देखा, श्री ठाकुर महाराज जिस षिविर में टिके पड़े थे, उसमें तीन स्त्रियां भी थीं । सुबन्धु वहीं उनके साथ टिका ।

गर्मी के दिन थे । सबसे छोटी स्त्री ने सुबन्धु को खजूर के गुड़ की चाय पिलाई थी । रात को उसी ने चण्डीदास का एक गीत गाया था । सुबन्धु भी तब गाने लगा था । तभी उसके मुंह से खून गिरा था । वह उसकी दषा देखकर रो पड़ी थी । रात भर वह स्त्री सुबन्धु के पास बैठी रही । सुबन्धु उससे बातें करता रहा और अपने पीछे की खिड़की से वह बाहर थूकता रहा ।

सुबन्धु ने पूछा, “तुम इतना करुण गीत क्यों गाती हो ?”

“मेरे महाराज कहते हैं कि कृष्ण करुणा के रूप हैं । उनका प्रेम रूप करुण है ।”

“प्रेम करुण ही होता है क्या ?”

“हां !”

“तुम्हारा नाम प्यामली क्यों है ? तुम तो इतनी गोरी हो !”

“मेरा यह नाम मेरे स्वामी का ही रखा हुआ है ।”

“स्वामी से तुम प्रेम करती हो ?” सुबन्धु ने पूछा ।

“स्वामी जी कहते हैं, प्रेम एक भाव है, जो सिर्फ जिया जा सकता है, वह भोगा नहीं जा सकता और उनकी तो अनेक संगिनियां हैं ।”

सुबन्धु ने पूछा, “सम्पूर्ण प्रेम कहां होता है ?”

प्यामली लजा गई । मुंह पर आंचल रखकर बोली, “समान—समान का जब भाव मिले, तो वहां प्रेम सम्पूर्ण होता है । नहीं तो वहां सिर्फ स्नेह है, दया है, सहानुभूति है ।”

सुबन्धु चुप हो गया । बहुत देर तक वह निस्तेज पड़ा रहा । प्यामली ने पूछा, “तुम किसी से बहुत प्रेम करते हो न ?”

“हां, मैं करता हूं ।”

“तभी तुम्हारी यह दषा है ।”

“पता नहीं क्यों ?”

“तभी प्रेम करुण होता है ।” प्यामली की आंखों में कुछ बरस आया “इस दुनिया में सब कहीं—न—कहीं इसी तरह प्रेम करते हैं । एक दूसरे को, दूसरे तीसरे को, और तीसरा चौथे को । यही कारण है, जो प्राप्त है, उससे कोई नहीं प्यार करता ।”

न जाने कब सुबन्धु की आंखें लग गयीं । प्यामली चली गयी । बीच में रात के पिछले पहर एकाएक उसकी आंख खुली । चारों ओर सन्नाटा ! उसे उस सन्नाटे में एक बार सुनाई पड़ा — प्यामली का बहुत मद्धम स्वर । वह षायद रो रही थी ‘ ‘ ‘ या गा रही थी — कुछ स्पष्ट नहीं हो रहा था । खिड़की के बाहर मालती के कुंज में से कोई चिड़िया सहसा चीखती हुई जाने किधर को उड़ गयी । फिर सन्नाटा ! उस सन्नाटे का भी षायद कुछ अर्थ होता है । उसमें सुबन्धु को बड़ा अकेलापन लगा । उसे लगा — अब वह ज्यादा दिन नहीं जियेगा । हिरन की याद आयी ।

एक दिन उसने कहा था, “मुझ पर कोई नजर न लगा दे ।”

सुबन्धु ने कहा था, “नजर तो तुम पर किसी की लगी थी ।”

हिरन ने उत्तर दिया था, “वह तो नजर मिली थी ‘ ‘ ‘ इस पर नजर लगायेगा कोई तीसरा ।”

देवधर के उस सन्नाटे में सुबन्धु को याद आ रहा था । तीसरा वही सुबन्धु है । उसी ने नजर लगाई है क्या ? हिरन की याद फिर भी आती है ।

हिरन ने आंख तरेरकर कहा था, “एक दिन जब तुम्हारी बहू आयेगी, फिर मैं लगाऊंगी नजर, हां !”

मगर वह सुयोग उसे न मिला । आंखों में स्वप्न लिए हुए उसकी बूढ़ी मां चली गयी । उस मां ने कहा था, “सुबन्धु, तुम राम की तरह यषस्वी और चरित्रवान होना । अगर मैं मर जाऊं, तो तुम भारत मां को मेरी जगह अपनी मां जननी समझना । सुबन्धु, याद रखना, यदि तूने मेरे स्वप्न को तोड़ा तो मैं मरकर भी तेरे लिए तड़पूंगी । तब मैं मुझे श्राप नहीं दूंगी – स्वयं अपने को ही श्राप दे लूंगी ।”

वह मां कितनी महान थीं ! कितनी महिमा थी उनमें ! जीवन भर कभी झूठ नहीं बोलीं । पिता जी जरा भी कुछ काम नहीं करते थे, मां कभी कुछ नहीं बोली थीं । दोनों वक्त बारहों महीने स्नान, अपने ही हाथों घर का सारा कामकाज । रोज यज्ञ और पूजन । वेद-पाठ ।

उसी मां के तीन पुत्र । तीनों सुन्दर । तीनों प्रतिभावान । पूरे जिले में प्रसिद्ध हुए बड़े भइया । बोर्ड में सर्वप्रथम आये । विष्वविद्यालय से एम0ए0 में सर्वप्रथम । देवता-तुल्य बड़े भइया – बिलकुल मां के चरितार्थ स्वप्न । वही पूज्यवर भइया । विदेश गये भाषा-विज्ञान में भारतवर्ष से पहला इस तरह का स्कॉलर ! डॉक्टर भइया !

मां नहीं देख सकती थीं भइया के इस यषस्वी रूप को । सिर्फ आषीर्वाद देकर स्वर्ग सिधार गई थीं । मेरे तीनों पुत्र इस देश के महानपुत्र होंगे ! पर महान कौन हो सका ? कौन महान हो सकता है ? जो भावुक न हो ! प्यार का भूखा-प्यासा न हो । जो किसी से बहुत अपेक्षा न करे ! पर क्या यह इतना सरल है ?

मझले भइया ने मां पर एक कहानी लिखी थी – ‘जननी’ । बड़ी ही सषक्त कहानी । वह कहानी हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका में छपी थी । कई भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ । उस कहानी में मां से मिली हुई भावुकता और स्वप्नशीलता पर भइया ने निर्मम प्रहार किया था । भइया की दूसरी प्रसिद्ध कहानी थी – ‘प्यार के भूखे’ – बेहद भावुक रचना – रसस्निग्ध । मझले भइया उधर साहित्य और दर्शन में आचार्य हुए, इधर एक प्रसिद्ध कहानीकार । लगीं उनके पास आने पाठकों और पाठिकाओं की चिट्ठियां । लड़कियों के प्रेम-पत्र ! सीधे-सीधे भाई साहब भावुक, स्वप्नशील चेतना । प्रेम की भूख बढी । भागे दौड़े इतने बड़े कहानीकार थे – मानव-मन की सभी गुत्थियों को समझने वाले, चित्रित करने वाले, पर वे इतना भी न जान पाये कि प्रेम तो सिर्फ रचना के प्रति होता है, रचनाकार को कौन पूछता है ? रचनाकार को तो सिर्फ द्वेष, हिंसा, उपेक्षा और घोर अपमान ही मिलता है । और अन्त में उसे मिलता है एक धोखा छलना अपने प्रति भी अपने-आपसे, और दूसरों से भी वही ।

मझले भइया इतना कभी नहीं समझ पाये । सुबन्धु ने कई बार टैगोर की वह प्रसिद्ध कविता ‘स्वर्णर तरी’ – (गोल्डन बोट) उनके सामने पढ़ी थी, पर मझले भइया उसे डांट देते थे, “तू अभी निरा बच्चा है ।”

और इस तरह मझले भइया टी0बी0 के पहले षिकार हुए थे ।

देवधर के उस सूने कमरे में सुबन्धु जिन्दगी को बहुत नजदीक से देख रहा था । सब कुछ साफ-साफ उसके सामने तैर रहा था । सब बातें अपने सही अर्थों में उसे याद आ रही थीं – मैं निरा बच्चा हूँ सम्पूर्ण प्रेम समान में होता है मुझ पर कोई नजर न लगा दे ! नजर लगाता है वही तीसरा । जहां समानता नहीं है, वहां है दया, स्नेह और सहानुभूति प्रेम करुण होता है प्राप्त से प्यार नहीं किया जाता

सुबन्धु अपने से सवाल कर रहा है, “किन्तु वह क्या था ? कॉलेज के उस मैदान में हिरन जो उस तरह मुझे अपने अंक में बांधे खड़ी थी ? उसके अनावृत वे दोनों वक्ष बार-बार उसके माथे पर क्यों रख उठते थे ? वह मकान परिरम्भण क्या था ? क्यों था ?”

कोई उत्तर नहीं !

कोई जवाब नहीं । चारों ओर वही घोर सन्नाटा । मालती-कुंज से जो चिड़िया चीखकर उड़ी थी, वह उड़ती हुई फिर उसी कुंज में आ गयी ।

सुबन्धु सोचता है, यह कैसा तीर लगा मुझमें ? जो हर क्षण मुझे बैधे रहता है ! हिरन झूठ नहीं है । हिरन सच है ... सच है हिरन । सुबन्धु ने उसके हंसते हुए मुख पर उस तरह चांटा मारा था । हिरन फिर भी हंसती रह गयी थी ।

बनारस में एक बार मझले भइया ने भी सुबन्धु को बैत से मारा था । सुबन्धु ने सिर्फ इतना ही कहा था, “आपको अपनी मर्यादा में रहना चाहिए ।”

“तू मुझे मर्यादा बताने चला है !”

मझले भाई साहब यही बात दुहराते गये थे और सटासट बैत से मारते गये थे । फिर भाई साहब ने उस काण्ड को लेकर कहानी भी लिखी थी ।

काष, सुबन्धु अपनी कहानी आज लिख पाता ! पर क्या कोई यह कहानी लिख सकता है ? असम्भव । भाषा तो बहुत अधूरी है इसके लिए । लिखना तो सिर्फ दस प्रतिषत हो सकता है । वह शेष नब्बे प्रतिषत कौन लिखेगा ? और लेखक की सीमा तो यह है कि उसमें लेखक बीच में आ जाता है ।

देवधर की वह सुबह कितनी उदास थी । सुबन्धु चारपाई से उठकर जब बाहर गया — खिड़की के पास, तो वह दंग रह गया । खिड़की के नीचे की तमाम जमीन खून की बूंदों से रंग उठी थी ।

वह बाल्टी के पानी से उस रंगी हुई जमीन को धोने लगा, तभी उसे खांसी आयी । मुंह से खून की धार फूट पड़ी । वह वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा ।

जब उसे होश आया, तो उसने अपने-आपको फिर उसी पलंग पर पाया । माथे पर हाथ रखे वही प्यामली मिली । कैम्प के दोनों डॉक्टर आये । उसे सुइयां लगीं । अस्पताल में उसका एक्स-रे लिया गया ।

शाम को जब उसकी तबियत कुछ काबू में आयी, तो उसने कहा, “मुझे जाना है ।”

“कहां जाना है ... ?” उसी प्यामली ने पूछा था ।

“कहीं जाना है !”

“वहां कौन है तुम्हारा ?”

अजब प्रश्न ! वहां कौन है मेरा ? किस भाषा में सुबन्धु इसका उत्तर दे ! “वहां मेरी वही हिरनमयी है ।”

“कौन हिरनमयी ?”

सुबन्धु निरुत्तर । प्यामली के भोले, कोमल चेहरे पर मुसकान फैल गयी । बोली, “पर आप इतना डर क्यों रहे हैं, सुबन्धु बाबू ? जो कुछ होना था वह तो हो ही गया है आप पर । इससे भी ज्यादा और क्या हो सकता है ? फिर कैसा भय ?”

प्यामली ने कहा, “समाप्ति ही में तो सम है । छन्द है ।”

सुबन्धु को तब बड़ा आश्चर्य हुआ था प्यामली पर । चौबीस—पचीस साल की लड़की और इस तरह से दर्शन बधार रही है । अपने जीवन की समाप्ति सामने आकर खड़ी हो जाये तो पता चले !

सुबन्धु ने गम्भीर होकर पूछा, “आपने कहीं जीवन की समाप्ति देखी है ?”

“अपनी ही ।”

“क्यों ? आपका जीवन समाप्त हो गया ?”

“हां, क्योंकि मैं राधाकृष्ण के अलावा और कुछ नहीं सोच सकती । क्योंकि कुछ कर नहीं सकती ।”

“यह समाप्ति नहीं, यह तो मृत्यु है । आत्महिंसा है । आत्मघात है ।”

प्यामली दूसरी दिशा में देखने लगी । वह यह नहीं जानती थी कि सुबन्धु में इतनी प्रखरता है ! मृत्यु के मुख में खड़ा हुआ वह इस तरह बोल सकता है !

प्यामली जाने को हुई तो बोली, “आपसे शायद ही दुबारा कभी भेंट हो, इसलिए मुझे सच बोलना चाहिए । सच बात यह है, सुबन्धु बाबू, कि मनुष्य की हर विवशता, हर संघर्ष उसे किसी दर्शन के पास खींचकर ले जाता है । उस दर्शन से भी जब उसे मुक्ति नहीं मिलती, तब वह उसी दर्शन को अपने ऊपर ओढ़ लेता है ताकि वह अपने को छिपा सके और दूसरे को ठग सके । मैंने आपके साथ यही व्यवहार किया है । उसके लिए मैं आपसे क्षमा नहीं मांगूंगी ।”

प्यामली मुसकराती हुई सामने से हट गई थी । सुबन्धु को तब बहुत पछतावा लगा था । प्यामली को कहीं उसने आहत तो नहीं किया । उस क्षण सुबन्धु की इच्छा हुई थी कि यदि प्यामली उसके सामने बैठी होती, तो वह पूछता, “संसार में इतने अच्छे लोग कैसे हैं ?”

“क्योंकि इतने ही बुरे लोग जो हैं ।”

यह तो बड़ा साधारण उत्तर है । प्यामली जरूर कोई सही और उचित उत्तर देती । न कोई जान, न पहचान, न कोई स्वार्थ, न आकर्षण, न भविष्य में कभी फिर मिलने की आशा, इस प्यामली ने मां की तरह उसकी सेवा की है । सही उत्तर यही दे सकती है !

पर कौन उत्तर दे सका है आज तक ! एक प्रश्न का उत्तर, झट दूसरे प्रश्न को पैदा कर देता है । शायद यही प्रगति है — तभी इतिहास बनता है ।

पर उस क्षण का इतिहास कौन लिखेगा, जब मनुष्य सारा कुछ मौन रहकर सह लेता है ? बिना किसी प्रतिक्रिया के सारा—का—सारा विष अपने गले में उतार लेता है ?

इस बार की भेंट में यही हुआ । सुबन्धु जैसे ही वहां कॉलेज में पहुंचा, दफ्तर की ओर बढ़ा — तभी सामने वही हिरनमयी । उसके मुंह से तत्काल निकला, “तुम फिर आ गये ?” सच, उस क्षण का इतिहास कौन लिखेगा ? उसे कोई इतिहास कहेगा भी ? सुबन्धु की तबीयत इतनी खराब । अन्तिम अवस्था में पहुंची हुई उसकी टी0बी0 । क्षण—क्षण जिसका

इतना क्षय हो रहा हो, कैसी अद्भुत थी तब उसकी सहन-षक्ति ! वह सिर्फ मुरझाकर रह गया था । रक्तहीन चेहरे पर न जाने कहां से मुसकान लाकर वह बोला था, “हिरनमयी !”

वह बोली, “सुबन्धु, तुझे किसी सेनीटोरियम में जाना चाहिए ।”

उसने उत्तर दिया, “मुझे जहां जाना चाहिए, मैं वहीं आया हूं ।”

“यहां क्या है ?”

“हिरनमयी !”

सुबन्धु के शरीर में बुखार था । हिरनमयी उसे ऊपर अपने कमरे में ले गयी । कॉलेज बन्द था । इतवार था षायद । वह पलंग पर पड़ते ही बेसुध सो गया । इस तरह कब दिन बीत गया, सांझ हो आयी, उसे कोई पता नहीं । तन्द्रा टूटी तो लगा, वह कहां आ गया है ! याद करने में कुछ समय लग गया । देखा, हिरन उसके पास बैठी है — बहुत करीब, इतनी कि उसके शरीर की गन्ध मिल रही थी । स्पर्श से रोमांच हो रहा था । उसका उत्ताप मानो और बढ़ गया ।

तब हिरन ने पूछा, “बताओ कैसे आये तुम यहां ?”

कैसे आया ? ... सुबन्धु क्या उत्तर दे ! आज पहली बार हिरनमयी इस तरह का प्रश्न पूछ रही है सुबन्धु से । वह यहां इतनी दूर प्रश्न का उत्तर देने नहीं आया करता । वह तो स्वयं अपना प्रश्न लेकर आता है, और बिना वह प्रश्न किये, चुपचाप वापस चला जाता है, जैसे हिरनमयी के हर मिलने से उसका प्रश्न कहीं-न-कहीं सहज ही उत्तर पा जाता है ।

पर आज उल्टे हिरनमयी प्रश्न कर रही है, “बताओ कैसे आये थे तुम यहां ?”

कैसे गया था सुबन्धु इतनी दूर, आज तटस्थ होकर वह सोच रहा है । तब बार-बार मैं वहां कैसे गया था ? क्षय होकर ... तीन भाग क्षय ... शेष एक भाग वही भाव । जो हिरनमयी से दूर रहकर हर क्षण उसमें अभाव जमाये रहता है । भाव से ही अभाव को जन्म मिलता है — यही तो चैतन्य ने कहा था ।

सुबन्धु चुपचाप पटना चला आया था । इस बार पटना में आकर उसे लगा कि सारा कुछ सपना है । सपने-सा ही सब झूठा है । पर उसे विश्वास नहीं होता । मां की तब उसे याद आती है । मां से अन्तर्यामी स्वर में वह कहता है, “मां, तुम मुझे माफ करना । मुझे पता है, तुम्हारा दुःख मुझसे कहीं ज्यादा बढ़ा है । पर मैं क्या करूं ? जो घटा है, अब तक घटता जा रहा है, मैंने उसे बुलाया नहीं था । तुम इतनी भावुक क्यों थीं, मां ? वह सारी भावुकता तुमने हम दो भाइयों में क्यों बाटी ? खुद सब समेटे हुए क्यों नहीं चली गयीं ? भावुकता तो सिर्फ चिता में जलकर खाक होती है, वरना वह सारी जिन्दगी को खाक कर देती है । इसमें कोई गति नहीं ।”

“और भावुकता के संग अंहकार का योग !”

“यही मैं हूं, मां ! तुम्हारे स्वप्न को तोड़ने वाला । क्या अब भी क्षमा मांगने का मेरा अधिकार बाकी है ?”

आज सुबन्धु को अपने उस मरे हुए सुबन्धु पर ब्रज की यात्रा में हंसी आ रही है । इसकी ब्रजयात्रा तो वही थी, जब वह क्षण-क्षण क्षय हुआ था । यह यात्रा उसके लिए उसी का मजाक मात्र है ।

पर सब बातें नये सिरे से उसे इस तरह याद क्यों आ रही हैं, इसी पर उसे आश्चर्य हो रहा है । लगता है, कोई चीज मरती नहीं क्या ? सिर्फ उसका रूपान्तर ही होता है क्या ?

हिरनमयी में क्या मरा और क्या रूपान्तरित हुआ ? कुछ नहीं । षायद कुछ भी नहीं । तभी हिरनमयी के पति षुभ्रापुं ने एक दिन बातों-बातों में ही अपनी पत्नी के लिए कहा था, “मेरी हिरन तो इतिहास का मजाक है । जहां खड़ी हुई थी, वहीं रूक गयी है।”

हिरनमयी ने हँसकर पति को बड़े कोमल स्वरों में जवाब दिया था, “किसी को एक जगह खड़ा भी तो रहना चाहिए , ताकि वह तेजी से बदलते और भागते हुए तुम्हारे इतिहास को देख सके ... हिसाब लगा सके !”

“पीछे एक जगह खड़े रहकर इतिहास की गति नहीं जानी जा सकती, इसके लिए इतिहास के संग चलना पड़ता है ।”

“चलना नहीं, बदलना पड़ता है – ऐसा कहो !” हिरनमयी खुल कर हँस पड़ी थी, “इस तरह बदलते जाना कि अन्त में जब अपने-आपको तलाषो तो उसका अता-पता भी न मिले !”

यही अता-पता जानने के लिए हिरन जब भी इस यात्रा में अवसर पाती है, वह सुबन्धु से तरह-तरह के प्रश्न करती है ।

पर सुबन्धु के पास अब कोई उत्तर षेष नहीं है । क्योंकि अब उसके पास कोई प्रश्न नहीं है ।

तब वह हारकर पूछती है, “तुम कहां गये, सुबन्धु ?”

सुबन्धु उत्तर देता है, “जहां आज मैं हूँ ।”

तब हिरन उदास हो जाती है । उसे अनुभव होता है कि कारण कहीं वही हिरन है। भाव में अभाव जगाने वाली । फिर सामने से उस तरह हट जाने वाली । वह सोचती है तब, सुबन्धु को क्या मिला ? सुबन्धु ने ही उसे इतना गहन भाव दिया था । वही सेतु बनकर आया था उसके और महाराजकुमार के बीच । कितना महान था सुबन्धु ! उसी ने इस बात की प्रतीति दी थी कि प्रेम क्या होता है । और उस प्रतीति को हिरन महज निहारती रह गयी थी । और उस निहारने में आखिर वही सेतु ही तो टूटा । उस अभाव में हिरन को तो भक्ति मिली – प्रेमभक्ति ! पर सुबन्धु को क्या मिला ? सिर्फ एक अन्धी प्रतिक्रिया । हिरनमयी को बेहद क्लेष मिलता है आज यह सब सोचकर ।

पतितराम आज की यात्रा में अपने कन्धे पर षिषु को बैठाये हुए गा रहा है – कोई अवधी लोकगीत । षिषु की मां जैजैवन्ती नाराज हो रही है, “यह क्या भों-भों करके गा रहा है ? गाना ही है तो कोई धर्म का गीत गा । कोई भजन ... कोई कीर्तन, कोई नाम जप । यह क्या गाता है यहां ?”

सैयां मोर गइलै रामा पुरबी बनिजियां

से लेई हो अइलें ना

रस बेंदुली टिकुलिया, से लेई हो अइलें ना ...

औरत का गीत मरद गाता है । पतितराम जवाब देता है, “जब औरत न हो तब मरद में ही छिपी वही औरत तो गाती है । और जब मरद को कहीं वह औरत मिल जाती है, तब वह मरद गाता है, जिससे खेतों में फसल उगती है । उजाड़ में हरियाली लहरा जाती है । रेत बालू में जल की धार फूट निकलती है ।

“मुझ पर इस तरह नाराज मत हो, बचवा की मां !”

जैजैवन्ती और भी ज्यादा नाराज होती है, "तू मुझे बचवा की मां मत कहा कर ! खबरदार !"

"बोलो, फिर क्या कहा करूँ" बताओ !"

"महाराजिन !"

"छी: छी: छी: महाराजिन तो भोजन बनाने वाली को कहते हैं, जो किसी के चौके में"

जैजैवन्ती उसे रोकती है, "अच्छा-अच्छा" राहुल की मां पुकारा कर !"

पतितराम हँसकर रह गया ।

यात्रा चल रही है । सुबन्धु का अब यात्रा में बहुत थकन महसूस होती है । उस अब लगने लगा है — उसकी यात्रा अब दुहरी हो गयी है । एक पैर की यात्रा । दूसरी उसके दिमाग की — जो उसके माथे को रौंदती हुई चल रही है और दोनों उसके लिए अनावश्यक । वह यह सोचकर बहुत ही कष्ट पाता कि वह सुगन के आग्रह से क्यों इस यात्रा में आया ? एक भोगा हुआ क्षयपूर्ण जीवन उसे फिर दुहराना पड़ रहा है । हिरनमयी से बहुत दूर-दूर सुबन्धु चलता, पर उसे लगता वह हिरनमयी के संग चल रहा है । हिरनमयी उसे दीखती नहीं, पर उस भीड़ में उसे सर्वत्र वही हिरनमयी महसूस होती । वह चलते-चलते अपनी आंखें बन्द कर लेता । लेकिन दिमाग जाने कैसा करने लगता । अचानक तन्द्रा-सी होने लगती और लगता, उसके चारों ओर उसी हिरनमयी की भीड़ लगी हुई है ।

सुबन्धु फिर पटना से वहीं हिरनमयी के पास पहुंचा है । चौथी बार । मां की एकमात्र बची हुई स्मृति वह नीलम की अंगूठी पचास रुपये में बेचकर । उन्नीस सौ सैंतालीस । मार्च के दिन । कलकत्ता में, नोआखाली में खूब भयानक दंगे चल रहे हैं । दोनों ओर असंख्य शरणार्थियों का आना-जाना हो रहा है ।

हिरनमयी मलती है । इस बार वह प्रण नहीं करती । वह सीधे बताती है — उसकी शादी तय हो गई है । एक एडवोकेट के साथ । शादी मां-बाप ने तय कर रखी है । और हिरनमयी ने नौकरी से इस्तीफा दे दिया है ।

हिरनमयी को उसी दिन नवद्वीप के लिए रवाना होना था । सुबन्धु बिलकुल मौन था । उसके शरीर में जो रोज बुखार बना रहता था, वह आज गायब था । बिलकुल ठंडा शरीर । भावहीन मुख । दोनों साथ चले । सामने वही गंगा नदी । वही गंगा, जो नवद्वीप को अपनी बाहुओं से छू रही है । उसी गंगा को आज यहां इतनी दूर पार करना था । झोंपड़ी वाली नाव पर वे बैठे थे । खे रहा था एक वृद्ध । नाव के ऊपर बनी हुई झोंपड़ी में एक चिराग जल रहा था । दोनों चुप । हिरनमयी की शादी होने जा रही है । दोनों चुप । नाव हिलती, उसकी दिशा बदलती, तो चिराग का जरा-सा प्रकाश सुबन्धु के चेहरे पर पड़ता । उस चेहरे को देख हिरनमयी कांप जाती और अपनी आंखें बन्द कर लेती । नाव फिर हिलती । चिराग की रोशनी हिरनमयी के मुख पर पड़ती — आंख के निचले हिस्से पर गाल और होठों पर । रोशनी में आंसू झलकने लगते । होठों पर कंपकंपी उठती । फिर दांतों के तले वे कांपते हुए होंठ भिच जाते । कहीं कोई प्रण नहीं । कोई जिज्ञासा नहीं । जैसे सब को आज सम मिल रहा है ।

गंगा पार करके टमटम पर बैठकर वे दोनों स्टेशन की ओर चल रहे हैं । खागरा घाट स्टेशन । सुबन्धु अपने वक्ष पर मजबूती से हाथ जकड़े बैठा है । नहीं तो, कहीं वह सहसा बिखर न जाय । क्षय तो हो ही चुका है । सिर्फ वही अन्तिम बिखरन बाकी है । हिरनमयी बिलकुल उससे सटी बैठी है । उसकी बड़ी तेज सांस चल रही है । रह-रहकर वह एक

लम्बी सांस लेती । किसी रिक्तता को हवा से षायद भरने के लिए । और बार-बार उसका माथा सुबन्धु की दायीं बांह पर आकर टिक जाता । और सिसकियों के एक अजब भूचाल में हिरनमयी डूब जाती । पर सुबन्धु वैरागी की तरह बैठा रहा । जैसे वह किसी की चिता के सामने बैठा हो । टमटम के पहियों की आवाज, घोड़े की टाप उसे लग रही थी, जैसे चिता की आग में षव की पसलियां टूट रही हैं ।

स्टेशन पहुंचते-पहुंचते रात के साढ़े ग्यारह बज गये । ट्रेन दो बजे रात को आयेगी । दोनों वेटिंग रूम में बैठे हैं । जैसे दोनों के दोनों कहीं बहुत दूर से लुटकर आये हुए षरणार्थी हैं । भयानक मौन दोनों के बीच खिंचा हुआ है । न कुछ खाना, न पीना । जम्हाई भी नहीं । बस बीच-बीच में एक लम्बी सांस खिंच उठती है, जैसे सारंगी के तार थरथराकर टूट रहे हों ।

दो बजे ट्रेन आयी । दोनों वैरागी की तरह उसमें बैठे । गाड़ी चल दी । एक बर्थ पर हिरनमयी । सामने की बर्थ पर सुबन्धु । चार बजने को हुए । हिरन की आंख लग गयी । कोई स्टेशन आया । सुबन्धु चुपचाप उठा । षाल उठाकर वह हिरनमयी पर फैला देता है – सिर से पांव तक । एक क्षण उसे देखता है और धीरे से ट्रेन छोड़कर नीचे उतर जाता है ।

दूर देश का वह अनजान रेलवे स्टेशन । सुबन्धु सूने प्लेटफार्म पर टहलता है । पूरब में लालिमा छाने लगी थी । सुबन्धु उधर ही निहार रहा है । जैसे उधर से उसकी मां उसे देख रही हो । नारियल और केले का वह वन । उस वन में से जैसे एक अकथ हल्का-सा सुर उठता, फिर सहसा टूट जाता । चारों ओर दिषाओं में उसकी प्रतिध्वनि गूंज उठती । फिर सारे अन्तरिक्ष में वह टूटा हुआ सुर आन्तर्नाद करने लगता ।

नारियल और केले के बगान से झुण्ड-की-झुण्ड चिड़ियां उड़कर आसमान में छा गयीं । वह टूटा हुआ सुर धीरे-धीरे लौटकर सुबन्धु के भीतर समाने लगा ।

7

आज की यात्रा घाटा से कामवन के लिए है ब्रज में कहावत सुनने में आती है – कामवन की नारी, चरण पहाड़ी भोजन थारी । अर्थात् यहां के पुरुष अब भी अपनी थकी हुई स्त्रियों के पैर दाबते हैं । और इस तरह जब वे प्रसन्न होती हैं, तभी वे पुरुषों की थाली परसती हैं ।

गजब किया है कृष्ण ने इस ब्रज में । लुंजु पटेल राधाबाई से कह रहा है, “कृष्ण ने गजब किया है इस ब्रज में । परकीया प्रेम की इतनी महिमा ! षिव . . . षिव . . . राम . . . राम . . . राम . . . !”

राधाबाई जवाब देती है, “इसमें षिव-षिव कहने की क्या बात ! अरे, परकीया परेम की लील करके उन्होंने परेम की महिमा ही तो बताई है । परेम जो जीवन के लिए इतना आवष्यक है ! वही परेम जब तक था, महाभारत का युद्ध कहां हुआ ? और जैसे ही वह परेम खत्म हुआ, इतना बड़ा महाभारत हुआ । परेमहीन कृष्ण को खुद ऐसे-ऐसे कर्म करने पड़े कि विष्वास नहीं होता ! और अन्त में तभी वह बहेलिए के हाथ से मारे गये ।”

लुंजु पटेल कहता है, “अरे, वह तो श्राप था दुर्योधन की मां का उन पर ...”

राधाबाई नहीं मानती, “श्राप क्या, कृष्ण परेमविहीन होने के नाते बलहीन हो गये थे, तभी सबका दांव लगा। जब तक वे ब्रज में थे, कंस जैसा दुष्मन भी उनका कुछ न कर सका !”

सहसा तभी श्रीमद्गोस्वामी श्री ब्रजरमण लालजी का दूरगामी बोल उठा, “देवियो और सज्जनो ! मुझे यह सूचना देते हुए अपार कष्ट हो रहा है कि गत रात को हमारे बीच में चोरी की एक घटना घटी है। यात्री नम्बर सात सौ तेरह – सेठ बालमुकुन्द गुप्त के एक सौ बहत्तर रूपये किसी ने चुराये हैं। वह अधर्मी है, पापी है, जिसने ऐसा कुकर्म किया है। अब भी अवसर है कि वह गुप्त रूप से सारा धन राधाकृष्ण के रथ में रख दे, नहीं तो वह नरकगामी होगा।”

इसके बाद वही सर आर० बी० रेड बोलते हैं, “लेडीज अइण्ड जैनटूलमइन ! आई एम सारी टू बताते हुए दैट ...”

पुलिस ने यात्रा में उसी अभागू को पकड़ रखा है – वही अभागू जो डाकुओं के गिरोह से भागकर यहां आया है। पर अभागू के पास कुछ भी नहीं मिलता।

सुगन कहती है, “इस यात्रा में लोग इस तरह चोरी क्यों करते हैं ?”

पतितराम बोल उठता है, “यह इतना बड़ा समाज भी तो है। जहां जीवन होगा, वहीं चोरी भी होगी। यह तो जरूरी है।”

सुगन घूरकर पतितराम की ओर देखती है। पर पतितराम चुप नहीं होता। कहता है, “और चोरी तो सभी करते हैं। कौन बचा है इस दुनिया में ऐसा ... !”

सुबन्धु डांटता है, “चुप रह ! बेकार में बकबक करता है !”

सुगन का पति प्रीतमदास किसी यात्री से बातें करता चल रहा है। न जाने किस बात के प्रसंग में उसके मुंह से निकला, “यथार्थ को यथार्थ समझने के लिए भी कोई आदर्श चाहिए।”

पतितराम यह सुनकर भौचक्का रह जाता है, “बाप रे बाप, कैसी बात कही है इस चुप्पे ने !”

प्रीतमदास की यह बात सुबन्धु के कान में भी टकरायी। सुबन्धु ने पूछा, “यथार्थ को यथार्थ समझना भी तो स्वयं एक आदर्श है।”

प्रीतमदास ने मुसकराकर कहा, “अजी साहब, मैं बहुत कम पढ़ा-लिखा आदमी हूं – मैं क्या जानूं इन बातों को ! इसे तो आप जैसे पढ़े-लिखे लोग ही जानें !”

पतितराम आंखों-आंखों में ही हंसा।

सुबन्धु के सामने आज स्पष्ट हुआ है कि यथार्थ क्या है ? सिर्फ एक यथार्थ। वह भी अब, जब इस अभिज्ञान का कोई मतलब उसके लिए नहीं है। हर यथार्थ मनुष्य को पहले आदर्श ही लगता है। और अन्त में वही कटु यथार्थ रह जाता है। यही उस मनुष्य को तोड़ देता है, जो उस भाव का भावुक अभिमानी भोक्ता रहा है।

किन्तु सुबन्धु तब भी नहीं टूटा था। क्योंकि जो टूटने की जगह थी, तब वहां घाव ही घाव था। सुबन्धु पटना वापस आकर करीब सोलह दिन बीमार पड़ा था। तब वही श्री ठाकुर महाराज – उसे उठाकर गिरीडीह स्टेशन से देवधर अपने कैम्प में ले आए थे। वहां वही प्यामली सुबन्धु से मजाक करती है, “प्रेम से पेट भर गया कि अभी खाली है ? अगर अब

भी खाली हो तो उसे इस तरह मत छोड़ना, उसमें सत्तू भर लो, नहीं तो तुम जानते हो इस दुनिया में कोई जगह खाली नहीं है ।”

सुबन्धु बच्चों की तरह प्यामली का मुंह निहारता रह जाता है । वह हंस-हंसकर कह रही है, “जगह खाली हुई कि उसमें हवा अपने-आप आकर भर गयी । नहीं तो उस खाली जगह में कहीं वही कृष्ण आ गये, कहीं वही राम ... या कहीं भूत भवानी या देवी देवता ।”

सुबन्धु सेनीटोरियम में भर्ती होने के लिए जा रहा है । सेवाषिविर के चन्दे से उसे कुल एक सौ पचास रुपये मिले हैं । देवधर से बिलासपुर । वहीं कही है वह पेण्ड्रा रोड सेनीटोरियम ! जसीडीह स्टेशन पर एक दूसरा रोगी उसी डिब्बे में चढ़ता है । बेतरह हांफता-कराहता हुआ । उसे तीन आदमी बाकायदा उठाये हुए डिब्बे में लाते हैं और सीट पर उसे बिठा देते हैं ।

सुबन्धु के शरीर में बुखार है । कभी-कभी खांसी आ जाती है । वह अधमूंदी आंखों से उस रोगी को देखता है । रोगी न बैठ पा रहा है, न लेट पा रहा है । बोलता भी नहीं । बस केवल हांफ-हांफ कर कराह रहा है ।

सुबन्धु ने पूछा, “इन्हें क्या तकलीफ है ?”

उन्हीं तीन आदिमियों में से एक ने बताया ; “सात महीने से इन्हें नींद नहीं आयी है ? सब डॉक्टर, वैद्य, हकीम की दवाइयां कराके हार गये ।”

“अब कहां जा रहे हैं इन्हें लेकर ?”

“आसनसोल के पास एक दरगाह शरीफ है, वहीं ।”

सुबन्धु उस रोगी की दशा देखकर अपने को भूल गया — मेरा क्या रोग है ? मुझे क्या तकलीफ है ? मेरी बेचैनी क्या है ?

आधी रात होने को आयी रोगी के संग के वे तीनों आदमी सो गये । सुबन्धु की आंख उसी रोगी पर गड़ी थी । किसी तरह से प्रयत्न करके भीख मांगने के स्वर में रोगी बोला, “भइयाजी, किसी तरह से मुझे मार डालो ! मेरी जान ले लो, भाइ साहब ! मुझे ये लोग खुदकुशी नहीं करने देते । और अब मैं इस काबिल नहीं, कि खुदकुशी कर सकूं ! मैं आपसे हाथ जोड़ता हूं भाईजान ! मुझ पर रहम करो !”

सुबन्धु अभी तक यही समझता था कि उससे अधिक दुखी और कोई नहीं है । इस रोगी की दशा देखकर दुख के बारे में उसका विचार ही बदल गया । अपना ही दुख सबसे बड़ा नहीं है, मुझसे ज्यादा दुखी और न जाने कितने लोग होंगे !

वह रोगी आसनसोल स्टेशन पर उतर गया । सुबन्धु फिर अकेला । आया वही पेण्ड्रा रोड । सेनीटोरियम से बाहर रोगियों का एक वेटिंग रूम था । सुबन्धु को वहां बैठना मुश्किल हो रहा था । एक-एक हफ्ते से आकर रोगी वहां प्रतीक्षा कर रहे थे । सेनीटोरियम में बिलकुल जगह नहीं थी । अजब-अजब दारुण स्थिति के रोगी थे वहां । सुबन्धु तो फिर भी उन सबसे अच्छा था ।

सुबन्धु वापस बनारस के लिए चल पड़ा । कटनी होकर इलाहाबाद । फिर मुगलसराय से बनारस । बनारस अपने घर में आकर उसने देखा, मझले भाई साहब वहां भुवाली से वापस आ गये थे । उनकी तबियत बिलकुल ठीक हो गयी थी ।

दो दिन बाद मझले भाई साहब ने कहा, "तुम जैसे रोगी को मैं अपने साथ नहीं रखूंगा !"

सुबन्धु भाई साहब का मुंह देखता रह गया ।

उसके मुंह से निकला, "यह रोग तो मुझे आपसे मिला है ।"

भाई साहब ने बड़ी कटुता से कहा, "मुझसे या उस सुन्दरी से, जिसके पीछे तुम इस तरह दीवाने रहे हो ?"

सुबन्धु के लिए यह असह्य था । वह घायल सर्प की तरह भाई साहब पर टूट पड़ा । निर्जीव सुबन्धु को भाई साहब ने वहीं फर्ष पर दे मारा । सुबन्धु रोया नहीं । षायद तब उसकी आंखों में आंसू थे ही नहीं । वह चुप रह गया । उसने यही समझा, उसके भाग को सम्पूर्णता मिल रही है । हर आदर्ष धीरे-धीरे अपने परम यथार्थ रूप में उसके सामने प्रकट हो रहा है ।

वह चुपचाप बनारस से लौटता है । अपनी जन्मभूमि — चेतलाष्यामगंज कस्बा ।

बहुत दिनों बाद पिताजी ने सुबन्धु को देखा । बल्कि पाया — इस दषा में । इतने गऊ पिताजी ! उन्होंने कहा, "ईमानदार की यही दुर्गति है बेटा !"

सुबन्धु अपने घर में पड़ा रहता । पिताजी की वह सेवा-सुश्रूषा सुबन्धु उसे कभी नहीं भूल सकता । सुबन्धु की हालत दिनों-दिन सुधरने लगी । उन्हीं दिनों सुगन उसके घर आने-जाने लगी थी । तब उसका ब्याह नहीं हुआ था । पूरे कस्बे में सबसे मषहूर मारूफ लड़की सुगन । सारी आंखें उसके आस-पास बिछी रहती थीं । और उसे इस बात का परम आष्वर्य था कि सुबन्धु वह पहला पुरुष है, जो कभी उसे आंख उठाकर भी नहीं देखता ।

उन्हीं दिनों एक दिन सुगन ने सुबन्धु से कहा था, "तुम्हारे बारे में मैं सब जानती हूं ।"

"अच्छा है, अगर जानती हो !"

इसके बाद भी सुबन्धु का जरा भी ध्यान सुगन की ओर नहीं गया । उसे देखने बड़े भाई साहब आये । बड़ी बहन आयी । और इधर-उधर के सारे हित-सम्बन्धी और नाते-रिष्तेदार आये । सुबन्धु को बहुत ही अच्छा लगा । उसे वहां फिर एक नये अर्थ में अपने अस्तित्व का अनुभव हुआ ।

तभी कलकत्ता से श्रीमती हिरनमयी मुखोपाध्याय का भेजा हुआ उसे एक छोटा-सा पार्सल मिला । पार्सल और पत्र । पार्सल में था — एक अंगूठी और एक फाउण्टेनपैन । पत्र में लिखा था : 'वह आगरा आ रही है पति के साथ ताजमहल देखने — कितनी अच्छी बात हो यदि वह मुझे वहां मिले । तिथि-तारीख और ट्रेन का नाम, समय सब कुछ दिया हुआ था ।

सुबन्धु ने सोचा, अब यह सब क्या है ? नाटक तो सारा खत्म हो चुका, अब यह उसका उपसंहार है क्या ? वह इस फाउण्टेनपैन का क्या करे और इस अंगूठी का ? वह कुछ नहीं समझ सका ।

वह तिथि आयी, समय आया, सुबन्धु अपने घर पर ही पड़ा रहा । तब एक दिन उसे आगरा के होटल के पते से पत्र मिला । तुम फौरन यहां मुझे मिलो । मेरे पति महोदय दो दिनों के लिए अकेले दिल्ली जा रहे हैं ।

सुबन्धु ने सोचा : इस उपहार को लौटाने का समय आ गया है । वह आगरा गया । होटल में वही हिरनमयी मिली । कितना परिवर्तन है अब उसमें ! मांग में सिन्दूर । मुख पर सन्तोष । सुबन्धु को देखते ही उससे लिपट गयी ।

बोली, "मेरे भागे हुए दोस्त ! तुमने समझा होगा, अब भेंट नहीं होगी ?" सुबन्धु ने ठण्डे स्वर में जवाब दिया, "अब इस भेंट का विषय क्या होगा ? मैं जीवर भर वही तीसरा व्यक्ति ही बना रहूंगा क्या ?"

यह कहकर सुबन्धु ने वे दोनों उपहार हिरनमयी के सामने रख दिये, "मुझे नहीं चाहिए यह ! मैं इतना लोभी-लालची नहीं !"

"सुबन्धु !" हिरनमयी चीख पड़ी । और लगी फूट-फूट कर रोने ।

"मेरे लिए अब आंसू पानी है ... सिर्फ पानी । यह सत्य तुमने दिया मुझे । मैं सदा इसके लिए तुम्हारा कृतज्ञ रहूंगा ! मैं मरा नहीं इसके लिए भी ।"

"और जितना मैं कृतज्ञ हूँ, वह मैं किस वाणी में कहूँ ?" हिरनमयी ने सुबन्धु का हाथ पकड़कर कहा । सुबन्धु ने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा, "पर षायद वह सुबन्धु मर भी गया । वह सारा कोमल, सुन्दर,, महिमामय सब ! और उसे मारने वाली तुम हो । इसके लिए भी यह सुबन्धु कृतज्ञ है तुम्हारा !"

"और ?" ... हिरनमयी आंसुओं के बीच बोली, "और ?" इसके बाद भी जो बहुत-बहुत कुछ षेष बचा रह जाता है, वह ?"

"वह तुम्हारा क्षेत्र नहीं है !"

"पर वह तुम्हारा तो है न ! उसमें कहीं कोई क्षमा नहीं है ?"

"कैसी क्षमा ? ... मैं अब दया, क्षमा, माया, ममता, प्रेम कुछ नहीं जानता । सिर्फ इतना ही जान पाया हूँ - यथार्थ ही सत्य है । अन्त में मन को बेधकर, रौंदकर यही आता है सामने !"

सुबन्धु के चेहरे पर सहसा एक मुसकान उभरी । उसने पूछा, "मैं आपके सफल हनीमून के लिए मुबारकवाद दे सकता हूँ न !"

"हनीमून ?" हिरनमयी ने अपने थरथराते हुए होंठ को दांत से भींच लिया ।

बड़ी देर में हिरनमयी ने अपने-आपको आष्वस्त किया । फिर बड़े भक्ति-स्वर में बोली, "सुबन्धु, तुम एक बात बताओ - क्या तुम मेरे शरीर को पाकर मुझे पा जाते ?"

"अब ये फिजूल, बेमतलब की बातें मुझसे क्यों कर रही हो ?"

"सिर्फ इसी का उत्तर दे दो तुम ! तब मैं षान्ति से मर सकूंगी !"

हिरन ने अपनी आंखें मूंद ली थीं । सुबन्धु सामने की दीवार देख रहा था, बोला, "जो वह पाये वही इसका उत्तर देगा । ... यह उत्तर आप अपने ष्पति से मांगिये ! या उन सब से जो इस प्रश्न के अधिकारी हों !"

"नहीं, अधिकारी सिर्फ तुम हो ।"

हिरनमयी आंखें मूंदे हुए बोल रही थी । सुबन्धु धीरे से बाहर निकल गया । और वह अब मिला है इस यात्रा में । इतने वर्षों बाद । बीच में, इतने लम्बे व्यवधान के बाद । हिरनमयी को आज लग रहा है, जैसे यह आज की बात हो । सुबन्धु जैसे उसके सामने अब भी खड़ा है । और बीच में वही प्रश्न अब तक तना हो ।

हिरनमयी इस यात्रा में जब कोई गीत गाती है, उसे लगता है, उसके सुर में दो ताल बजते हैं — एक ओर है हिरनमयी की अन्तरात्मा, दूसरी ओर है वही सुबन्धु । और इस सबके अन्तस्तल में है एक भूली हुई स्मृति — एक मूर्च्छा की तरह, एक मांड की भांति ! वह एक ऐसा छेड़ा हुआ करुण गीत है, जो कभी समाप्त ही नहीं होता ।

यह सब छल है । यथार्थ से बहुत दूर हटकर उसे थोथे दर्षन में बांधने का झूठा प्रयास है । आज इस यात्रा में सुबन्धु को देखकर हिरन अपने-आपमें सोच रही है । सुबन्धु टूटा है ' ' ' ' क्योंकि हिरनमयी ने ही उसे क्षय दिया था । सुबन्धु माध्यम था । सेतु था । स्वभावतः वही टूटा । यात्रा नहीं थमती, रास्ता नहीं टूटता !

यात्रा चल रही है । आज की यात्रा कामवन के लिए है । कामवन पड़ाव पर आज एक बहुत बड़ी रासलीला हागी । आज कामवन जल्दी पहुंचना है । उसका माहात्म्य ही और है । दूरगामी स्वर में गोस्वामी महाराज सबसे आगे बोल रहे हैं, "कामवन जल्दी पहुंचना है । वहां का माहात्म्य ही और है !"

सुबन्धु सुग्गन से हंस-हंसकर कुछ बातें कर रहा है । हिरनमयी उस भीड़ में से सब साफ-साफ देख रही है । कामवन का माहात्म्य ही और है । सुबन्धु की लौटायी हुई वह अंगूठी और फाउण्टेनपैन अब भी हिरनमयी के पास सुरक्षित है ! वहीं कलकत्ता के हावड़ा वाले घर में । उसी कलम से एक बार हिरन ने कुछ लिखना चाहा था । वही जो उसे जिला रहा है । पर कुछ लिखा नहीं गया । काष, कोई उसे उसी कलम से लिखता! उसे चित्र की तरह उतार देता ! फिर हिरन उसे देखती । उसे पढ़ती ' ' ' ' आदि से अन्त तक । पर अभी अन्त कहां हुआ ? इसका अन्त भी क्या होगा ?

कोई एक है जिसकी सुधि होते ही हिरनमयी में षत-षत बांसुरी बज उठती है लेकिन उसके मन का अर्जुन ' ' ' ' वही सुबन्धु उदास होकर अपने जीवन का गाण्डीव उतार फैंकता है । उसे कौन-सी गीता बतायी जाये ? और वह कृष्ण कहां से आये — नयी गीता सुनाने वाला ? इस अर्जुन के पास तो कोई प्रष्न भी नहीं है । कोई युद्ध भी नहीं । वह बस अपना गाण्डीव फैंककर मस्त पड़ा है । वह अब माध्यम भी नहीं बनना चाहता । युद्ध छेड़े कोई और ' ' ' ' विजय और पराजय ' ' ' ' फल भोगे कोई और ' ' ' ' माध्यम बने केवल अर्जुन ' ' ' ' इस नये अर्जुन को अब यह बिलकुल भी नहीं स्वीकार्य है । अजब है यह उत्तरषती का अर्जुन ।

हिरनमयी को भीतर ही भीतर हंसी आ जाती है । पर वह उसी में रो भी पड़ती है । तब उसे लगता, वही हिरन ही कुरुक्षेत्र की वह भूमि है ' ' ' ' वही वह वृन्दावन है, जहां एक ओर युद्ध छिड़ा था ' ' ' ' और दूसरी ओर जहां बांसुरी बजी थी । वह युद्ध भी इन्तजार कर रहा है । और वह बांसुरी भी तब से अबाध गति से बज रही है ।

कामवन समीप आ गया है । यात्री प्रसन्नता से नाच रहे हैं । जैसे कोई तन्द्रा में चलता है, वैसे ही हिरनमयी चल रही है । सुबन्धु ने कॉलेज के उस सूने कारीडोर में उसके मुंह पर तमाचा मारा था, आज उसकी चोट उसे महसूस हो रही है । उस दिन जरा भी चोट उसे नहीं महसूस हुई थी । हिरन जिसे कभी किसी ने दूब से भी नहीं मारा था ।

यात्रा चल रही है । कामवन समीप है । जीवन का बड़ा अतीत भूत बनकर उसके संग-संग चल रहा है । वह अतीत को जी रही है । स्मृति भोग रही है । उसका पति पुभ्रापुं कहता है, "अतीत में वर्तमान नहीं जिया जा सकता ! अतीत सिन्धेसिस था, वर्तमान एण्टीथीसिस है । यही गति है । गति की यह प्रकृति है ।"

हिरनमयी समझ रही है आज — यह एण्टीथीसिस सुबन्धु है । पर सुबन्धु क्या गति है कोई ? नहीं, नहीं, कभी नहीं । पर वह स्वयं क्या कोई गति है ? हां, हिरनमयी गति है — इसके प्राणों में एक जययात्रा चल रही है । मथुरा से मधुवन ' ' मधुवन से जतीपुरा ' ' फिर कामवन ' ' वृन्दावन ' ' फिर ' ' !

हिरनमयी के कानों में सुबन्धु की हंसी सुनायी पड़ती है । उसी हंसी में सुग्गन की भी हंसी मिली हुई है । इस तरह से हिरनमयी कभी भी सुबन्धु के संग नहीं हंस सकी है ।

पतितराम के कन्धे पर बैठा हुआ वह षिषु आज एकाएक कहता है, "काकू !"

"हां, भइया !"

"काकू, हम कहां जा रहे हैं ?"

"एक खेल देखने ।"

"कौन खेलेगा ?"

"हम सब ।"

"मां भी खेलेंगी ?"

"पता नहीं, भइया !"

बच्चा थोड़ी देर चुप रहकर फिर पूछता है, "पतित काका ! तुम क्यों नहीं गाते ?"

"मैं इस तरह के गीत बहुत गा चुका हूँ ।"

"फिर कुछ और गाओ !"

"गाऊं मैं ?"

"हां, हां !"

राहुल गाने लगा, "आवारा हूँ ' ' आवारा हूँ ' ' " जैजैवन्ती ने सुना तो वह गुस्से से लाल हो गयी । उसने बच्चे को पतितराम के कन्धे से नीचे खींच लिया, "चल पैदल !"

बच्चा चुपचाप चलने लगा । पतितराम ने कहा, 'काहे इस तरह से बच्चे पर नाराज होती हो, राहुल की मां ! गाना ही तो गा रहा था ।"

जैजैवन्ती बोली, "तेरा भी दिमाग खराब है । फिल्म का गाना इस ब्रजयात्रा में !"

पतितराम ने कहा, "फिल्म जब जीवन में है तो यहां क्या बुराई ?"

"यहां और वहां से तुझे कोई फरक ही नहीं है ?"

"मुझे तो नहीं लगता । बताओ न, क्या फरक है ? यहां इस यात्रा में वही तो जीवन चल रहा है । चोरी ' ' झूठ और भूख, गुस्सा ' ' छोटा और बड़ा, मालिक और मजदूर !"

"तुझ से कौन बात करें !"

जैजैवन्ती चुप हो गयी । पतितराम को छेड़ने में मजा आता है । तब पतितराम धीरे-धीरे एक फिल्म का गाना गुनगुनाने लगा । जैजैवन्ती ने तब उसे डांटा, "क्यों रे, तुझे धर्म-अधर्म का कोई ख्याल नहीं है ?"

“बताओ न मुझे, धर्म क्या है ?”

“जाकर गोसाईं जी से पूछो न !”

“मैं तो मजदूर हूँ, बहंगी ढोता हूँ । मुझे क्या गोसाईं जी बतायेंगे ?”

बच्चा बोल पड़ा, “गोसाईं जी तो भोंपू बजाते हैं ।”

पतितराम हंस पड़ा । “ठीक कहा, गोसाईं जी भोंपू बजाते हैं । और यह यात्रा करने वाले लोग क्या हैं, भइया ?”

बच्चा जवाब देने जा रहा था, मां ने उसके मुंह पर हाथ रखकर रोक दिया ।

यात्रा आज अपने धाम पर पहुंच रही है । सुगन हंसकर सुबन्धु से बातें कर रही है ।

“देखो न मेरे पति की तबीयत ठीक हो गयी । पैर सीधे हो गये ।”

“इनका श्रेय किनको है ?”

“इंजेक्शन और दवाई को । पर मेरे पति इसका श्रेय इस यात्रा को देते हैं । क्योंकि वे स्वस्थ इसी यात्रा के बीच हुए हैं ।”

“मैं भी श्रेय इसी यात्रा को देता हूँ ।” सुबन्धु बोला ।

सुबन्धु की टी0बी0 भी यात्रा में ही ठीक हुई थी । सुबन्धु की तबीयत चारों ओर से लौटकर चेतलाष्यामगंज में मूलतः काफी ठीक हुई थी । पिता की स्नेह-छाया में । फिर भी किसी सेनीटोरियम में रखकर इस रोग को पूरी तरह से ठीक करवा लेना चाहिए वरना फिर यह कभी भड़क न उठे । बड़े भइया सुबन्धु को लेकर दिल्ली आये थे । डाक्टर ने जाँच करके बताया था, “हालत बहुत सुधर रही है । लंग्स पर फाइब्रोसिस फार्म होने लगा है । फिर भी उन्हें कुछ दिनों के लिए किसी अच्छे सेनीटोरियम में रख दिया जाय, तो बेहतर होगा ।”

बड़े भइया उसे लिए हुए बम्बई गये थे । बम्बई से एक सुदूर पहाड़ी जिला — वहां से सेनीटोरियम, बड़ा ही रम्य स्थान । ठण्डी गुलाबी हवा, चारों ओर हरियाली और सौन्दर्य । एक दिन डॉक्टर ने बात ही बात में पूछा, “आपको यह टी0बी0 क्यों हुई थी ? अब तो काफी हालत ठीक हो गयी है ।”

सुबन्धु के चेहरे पर मुसकराहट फैली थी । उसने कहा, “मुहब्बत कर बैठा था ।”

डॉक्टर बहुत प्रसन्न हुआ । हो-हो करके बड़ी देर तक हंसता रहा ।

बड़े भइया लौट आये । सुबन्धु डॉक्टर का प्रिय पात्र बनकर उसी के गेस्ट रूम में रहने लगा । बिलकुल दोस्त की तरह । डॉक्टर पंजाब का था — अभी तक अविवाहित ।

डॉक्टर ने एक दिन पूछा, “क्यों भाई, प्रेम तो बहुत ‘हैल्दी’ चीज है, फिर यह टी0 बी0 क्यों ?” “मेरे यहां करीब आधे मरीज इसी के शिकार हैं ? पर तुम्हारी तरह किसी ने साफ नहीं बताया है, इसीलिए मैं तुमसे पूछ रहा हूँ ।”

सुबन्धु को उत्तर देने में जरा भी संकोच न हुआ, सहज स्वर में बोला, “जहां समता है, समानता है वहीं प्रेम ‘हैल्दी’ है, वरना यह रोग है, बल्कि महारोग ।”

डॉक्टर आंख फाड़े हुए सुबन्धु को देखने लगा, “आप बिलकुल सच कह रहे हैं । और अकसर प्रेम असमानता में होता है ।”

डॉक्टर के षिषुवत् मुंह को देखकर, सुबन्धु को हंसी आ गयी । डॉक्टर ने सुबन्धु का हाथ पकड़कर कहा, “मैं भी टी0 बी0 का ‘पेषेन्ट’ रहा हूं, तभी मैं अब तक अविवाहित हूं । और तभी टी0बी0 का स्पेशलिस्ट भी हूं । रोगी रोग को सबसे अधिक जानता है न !”

यह कहकर डॉक्टर हंसता रहा । फिर उसने बताया, जब वह बाइस साल का था, तभी उसे टी0 बी0 हुई थी । बीस साल का जब था वह, वह भी एक चालीस साल की औरत से मुहब्बस कर बैठा था । औरत उसे आटा-दाल की तरह इस्तेमाल करती थी, और बेचारा प्रेमी उसके हुस्न की षायरी करता रहता था । महबूबा का षौहर मिलिटरी में कैप्टन था । दो साल बाद वह अपने घर आया । औरत ने अपने महबूब को पति से एक दिन मिलाया, बोली, “यह अपने ही बेटे की तरह है ।”

डॉक्टर की हंसी अजब थी । सुबन्धु करीब सवा महीने वहां डॉक्टर का निजी मेहमान बनकर रहा । जिस दिन सुबन्धु वहां से विदा होने को था, डॉक्टर ने कहा था, “इस मुल्क के सारे रोगों की जड़ है भावुकता । इसी से पेट का मर्ज, इसी से बुखार, इसी से ब्लडप्रेषर और इसी से टी0 बी0 । और तो और, इस मुल्क की तबारीख न बदलने में भी यही भावुकता है ।”

सुबन्धु ने इस यात्रा में गौर किया है — वही डॉक्टर वाली हंसी कभी-कभी यह पतितराम भी हंसता है ; किन्तु यह बेवकूफ पतितराम तो अभी तक भावुक है । बहंगी ढोता है, ऊपर से उस विधवा ब्राह्मणी की निस्वार्थ सेवा करता है । उसके बच्चे को अपने कन्धे पर ढोता है । फिर यह क्यों उसी तरह हंसता है ?

सुबन्धु ने पिछले दिनों किसी समय पतितराम से पूछा था, “क्यों रे, इसके पहले क्या करता था ?”

पतितराम ने झट उत्तर दिया था, “चोरी करता था ।”

सुबन्धु सन्न रह गया । फिर पूछा, “कहां का रहने वाला है तू ?”

उसी तरह का उत्तर, “जहन्नुमपुर का ।”

सुबन्धु उसका मुंह देखता रह गया था । आके पूछा, “तेरे बाल-बच्चे ? घर-परिवार ?”

“बाल-बच्चे है पातालपुरी में, घर-परिवार गया नरककुण्ड !”

सुबन्धु को गुस्सा आ गया था । उसने डांटते हुए कहा था, “तुझे कोई डर नहीं है क्या ?”

“मुझे कैसा डर ? डर में लगा दी आग, समझे, बाबूजी ! दो बार मर चुका हूं । यह तीसरी बार जी रहा हूं । आप भी षायद एक बार मर चुके हैं । अभी एक बार और मरिए, तब जानिएगा, जीना किसे कहते हैं ...” और यह जिन्दगी क्या है ।”

सुबन्धु हक्का-बक्का ! पतितराम को वह नीचे से ऊपर तक देखता, फिर ऊपर से नीचे तक । लगा, पतितराम की जगह सर्वथा कोई दूसरा आदमी आ गया है । यह कोई ठण्डा पत्थर है, या आग ! समझ में नहीं आता ! यह बहंगी ढोने वाला अपदार्थ पतितराम कैसे जानता है कि मैं एक बार मर चुका हूं ?

“बता, तुझे कैसे पता चला कि मैं एक बार मर चुका हूं ?”

पतितराम उसी डॉक्टर की ही तरह हंस रहा है । हूबहू वही हंसी । वही निर्मम अट्टहास ।

‘बता, मैं कैसे एक बार मर चुका हूँ ? बता जल्दी ’

“और अगर न बताऊँ ?”

“तो मैं तेरा गला घोट दूंगा !”

“बस !”

फिर वही हंसी, कटार की तरह मर्म में उतर जाने लगी ! सुबन्धु को लगा, वह धीरे-धीरे पतितराम के सामने छोटा होता जा रहा । तब बड़ी देर बाद पतितराम बोला, “बस, मैं यूँ ही जान गया ।”

“नहीं, किसी ने बताया है तुझे !”

“हां, मेरे पतितराम ने मेरे पतितराम को बताया है ।”

आज की यात्रा समाप्त होने को है । कामवन वह बिलकुल सामने दिख रहा है । सुबन्धु धीरे से पतितराम के बगल में चलने लगता है । स्वीकार करता है, “हां, पतितराम, मैं एक बार मर चुका हूँ ।” पतितराम को इस बार हंसी नहीं आयी वह भी धीरे से बोला, “आपको अभी एक बार और मरना है, फिर आप जियेंगे ।”

“तू मेरा ब्रह्म है क्या ?”

“आपका कोई ब्रह्म है भी ?”

“मैं ईश्वर और किस्मत को नहीं मानता ।”

“मेरे पास भी ईश्वर और किस्मत नहीं है । आगे बोलिए ’’ बाबू साहब ’’ ”

पतितराम जैसे हर दिन एक नया पतितराम बनकर सुबन्धु के सामने आता है और एकदम से तन जाता है । न झुकना, न टूटना । निर्भय ’’ निष्चिन्त ’’

सुबन्धु पूछता है, “तो फिर मैं एक बार और मरूंगा !”

पतितराम उत्तर देता है, “हां, इस बार तुम अपने शरीर के साथ मरोगे !”

सुबन्धु भयभीत हो जाता है । पूछता है, “सशरीर मरूंगा, तो फिर कैसे जिऊंगा ?”

“जिओगे ! ’’ एक दिन ’’ एक घंटा ’’ एक क्षण के ही लिए सही । पर जिओगे जरूर । वही होगा तुम्हारा मृत्यु-फल !”

8

कामवन में रासलीला हो रही है गोरे ग्वाल लीला की । रासधारी मण्डली है हाथरस की । कामवन के पर्वत-खण्ड पर एक छोटा-सा आयताकार मंच बना लिया गया है, जिसके पीछे एक पिछवाई है और पर्दा । मंच के ऊपर, मध्य में राधाकृष्ण का छोटा-सा सिंहासन । दोनों ओर सखियों के बैठने के लिए नीचे चौकियां पड़ी हैं । उसके सामने एक मण्डलाकार स्थान नृत्य के लिए खुला है । सामने रास मण्डली का संगीत समाज बैठा है — सिर पर पगड़ियां, बगल

बन्दियां पहने हुए, गले में दुपट्टा, मस्तक पर तिलक । वाद्य में है पखावज, हरमोनियम, सारंगी, तबला, झांझ, वेनु और मंजीर ।

राधाकृष्ण की झांकी हो रही है । सबसे पहले यात्रियों में से हिरनमयी ही उठकर श्रीकृष्ण—राधा तथा सखियों के चरण छूती है । समाजी का मंगलाचरण वातावरण में गूँज रहा है :

सज्जलजलदनीलं दर्षितो दारशीलं,
करतलधृतषैलं वेणु वाद्य रसालम् ।
ब्रजजन कुलपाल कामिनी केलि लोलं
तरुण तुलसिमालं नौमि गोपाल बालं ॥

वातावरण में झांझ, वेनु और मंजीर का सुर भरता जा रहा है । रासलीला शुरू हो गयी है । ठाकुर श्रीकृष्ण ने राधा को चन्द्रमा की उपमा दे दी है, राधा इस पर मान कर बैठी है, “चन्द्रमा में तो पांच दोष हैं, क्या मुझ में वही पांच दोष हैं ?”

क्षई निषाचर बंक पुनि, निषा बन्धु सकलंक ।
क्यों मो मुख उपमा दर्ई, दोषागार मयंक ॥

राधा नाराज होकर चली जाती है । कृष्ण वहीं मुर्झा जाते हैं । सारी सखियां कृष्ण को इस तरह उदास देखकर घबरा गयी हैं । कृष्ण ठाकुर बताते हैं, “आज मेरी प्राणाधार प्यारी जू मोते मान करि चली गयी है ।” ठाकुर राधा—विरह में गा रहे हैं, पृष्ठभूमि में वेनु बज रही है, बेहद उदास स्वर में, मंजीर खनक रही है, जैसे अभी उसका स्वर टूट जायेगा ।

हिरनमयी के भीतर भी वही वेनु बज रही है — विहाग स्वर में । वही मंजीर खनक रहा है ॥ दूर, बहुत दूर से वह सारा संगीत उमड़ रहा है । गुलमोहर और कदम के पेड़ । गंगाघाट रामनगर की ओर से बादलों के गरजने की आवाज और किसी के भेजे अंजुरी भर बेले के भूल ।

करुण रस की रासलीला चल रही है । समाजी तार सप्तक पर गा रहे हैं । पखावज पर सारंगी मानो बेसुध हो गयी है । वेनु और मंजीर जैसे गले मिलकर रो रहे हैं ।

बाधा दै राधा कित गई
वृन्दाविपिन अछत प्यारी बिन सब विपरीत भई ॥

राधा गायब हो गई है, और कृष्ण तलाष रहे हैं अपनी राधा को । कोई और भी ग्वाल वेष में ‘राधा—राधा’ पुकार रहा है । ठाकुर उससे पूछते हैं, “तुम कौन हो जो यां श्री विपिनन राज में राध राधे कहिकै टेरि रहे हो ?”

“मैं ग्वाल हूँ ।”

“ग्वाल हो ? पर तुम्हारा रंग इतना सांवला क्यों है ?”

“सांवला है — इसलिए !”

“अच्छा, पर तुम इस तरह राधा को क्यों तलाष रहे हो ?”

ग्वाल उत्तर देता है, “मैं श्री राधे का पति हूँ । आप कौन हो जो या कामवन मा श्री राधे—श्री राधे कह के टेरि रहे हो । आप कृपा करके या पराई भूमि कू तजि देओ !”

ठाकुर आश्चर्य में पड़ जाते हैं, “देखो प्रिय मित्र, आप आश्चर्य की बात मति कहौ। मैं हूं ठाकुर कृष्ण” राधा मेरी है।”

ग्वाल कहता है, “नहीं, राधा मेरी है।”

झगड़ा बढ़ता है, दोनों ओर से दलीलें बढ़ती हैं। समाजी के सुरताल में सहसा अन्तर पड़ने लगता है। वह पंचम पर गाने लगा है। पखावज पर सोयी हुई सारंगी जैसे जाग उठती है। पता चलता है — वह ग्वाल वेष में स्वयं श्री राधा ही हैं !

“यह कैसी हांसी है ? बोलो, राधा ?”

“तुम्हीं बताओ, ठाकुर।”

ठाकुर बताते हैं, “मृगमद कस्तूरी पीसि कै सारे षरीर मा तूने लगाय लीनी है — याही ते तुम ष्यामवरन है गयी हो।” हिरनमयी दर्षक मण्डली में जैसे बैठी नहीं है। वह चल रही है कहीं। कहीं कुछ खो गया है। वह उसी को तलाष रही है।

पर राधा ष्यामवरन क्यों हो गयीं ?

इस तरह रासलीला में बैठे-बैठे एकाएक हिरनमयी के जी में आया : वह यहां क्यों बैठी है ? सुबन्धु तो यहीं है ; उससे पूछे कि वह हिरनमयी क्या थी, कैसी थी, जो पहली बार कलकत्ता से पढ़ने आयी थी।

हिरनमयी माथा झुकाकर पण्डाल से बाहर आ गयी। पति सो रहा है। सुबन्धु भी सो गया होगा। देखा हिरनमयी ने। सुबन्धु जग रहा है। वह लेटा है, सुगन उसके अंक के पास बैठी है। दोनों कुछ बातें कर रहे हैं। और प्रीतमदास ? वह रासलीला देख रहा है।

हिरनमयी के जी में फिर आया, वह यहां क्यों खड़ी है ? उसे अब इधर बिल्कुल नहीं आना चाहिए। सुबन्धु को उससे जो नहीं मिला वही तो सुगन उसे दे रही है। फिर भी सुबन्धु अब कैसा हो गया है ? पर क्या इस तरह के प्रश्न करने तक का अधिकार हिरनमयी को है ? नहीं है, तो सुबन्धु फिर इस तरह से उसे मिला क्यों ? सुबन्धु उसे अपने अंग की तरह याद क्यों आता है ? उसे देखकर उसमें एक भयानक दर्द क्यों उठता है ? कैसा अवसाद छा जाता है ?

हिरनमयी जहां से खड़ी सुबन्धु और सुगन को देख रही थी, वहां से हटने में उसका प्राण कांपने लगा था। न वह रासलीला देख पा रही थी, न अपने षिविर में जा पा रही थी। उसे याद आता है, उसने तब सुबन्धु से एक कहानी सुनी थी। उसकी मां की कहानी। उसके तीनों भाइयों की बात। सुबन्धु ने कहा था, वह एम0 ए0 पास करने इंग्लैंड जायेगा। और वहां उसकी लायब्रेरी में जाकर पांच वर्षों तक पढ़ेगा, जहां कार्ल मार्क्स ने अपना ‘कैपिटल’ लिखा था।

आज भी हिरनमयी को जैसे सुनायी पड़ता है, “जै मां !”

सुबन्धु की यह जयजयकार थी। एक मां भारत” दूसरी उसकी मां ! पहले भारत मां आजाद होगी, फिर वह अपनी मां का स्वप्न पूरा करने इंग्लैंड जायेगा। वहां वह भारत का इतिहास लिखेगा — जहां से भारत खोया है। विक्रमादित्य के बाद से अंग्रेजों के यहां से जाने तक का इतिहास। वह भारत को भारत में ही ढूँढेगा। वही भारत जो यहां से उठकर इंग्लैंड चला गया है।

“भारत माता की जै ।”

स्मृद्र तरंग जैसा यह महागर्जन उस दिन सुनायी पड़ा था, जिस दिन मुचकुन्द, बहादुर वडोला डॉक्टर, आनन्द और लंगड़ा संन्यासी ने विष्वविद्यालय के ढाई हजार विद्यार्थियों के आगे चलते हुए पुकारा था । लगा था, सारा देश उमड़ गया है । इतनी शक्ति ... इतनी जाग्रत चेतना ! तिरंगा झण्डा सुबन्धु के ही हाथ में था । और वह सबसे आगे-आगे चल रहा था दोनों हाथों से झण्डा उठाये हुए ... हाथों की बंधी मुट्ठियां उसके माथे पर टिकी थीं । किस तरह से हिन्दुस्तान जगा था ।

आज कहां गया वह हिन्दुस्तान ? वह सुबन्धु , वह महागर्जन ! वह महाजागरण ! क्या उसमें कहीं खोटा था ?

सुबन्धु ने कहा था, “मेरे प्रति तुम्हारे भाव में खोटा था ... दया थी ... बड़ा प्रेम समानता में होता है ।” सुबन्धु याद दिलाता है बार-बार । हिरनमयी ने कभी उससे कहा था, “समान से समान का जब प्रेम मिले तो वहां प्रेम सम्पूर्ण होता है ... बड़ा होता है ... नहीं तो वह महज स्नेह है, दया है, सहानुभूति है ।”

सुबन्धु उसी का प्रतिषोध ले रहा है । पर वह प्रतिषोध किससे ? मुझसे या अपने भारत मां से ? या अपनी उस जननी से ? या इस उत्तरषती से ?

पर मनुष्य प्रतिषोध लेता है सिर्फ अपने से ही ।

हिरनमयी ने सुना, कहीं बादल गरज रहा है । उसने आसमान की ओर देखा, सारा आकाश भूरे-भूरे बादलों से छा गया था । वर्षा होगी क्या ? कामवन में वर्षा ! पर वर्षा के दिन तो नहीं हैं ! क्वार के दिन हैं ये ।

हिरनमयी के माथे पर एक ठंडी बूंद गिरी । पानी बरसेगा ।

रासलीला में समाजी का अन्तिम पद चल रहा था । पण्डाल पर रिमझिम वर्षा होने लगी । पखावज की थाप रूक गयी । लगता है पण्डाल गिरेगा । हवा चल रही है । लोग भाग रहे हैं अपने-अपने षिविर में । दूरगामी से गोस्वामी जी बोल रहे हैं । राधा और कृष्ण भी भाग रहे हैं, अपने-अपने कपड़े-लत्ते संभाले हुए । सखियां चांव-चांव कर रही हैं ।

कामवन में वर्षा !

यह बड़ा शुभ है — गोस्वामी जी बोल रहे हैं, “इस यात्रा में निष्चय ही सबकी मनोकामना पूरी होगी ।” हिरनमयी को हंसी आ जाती है : कैसी मनोकामना ! और वह पूरी भी होगी — यानी मनोकामना न हुई, कोई पूरी-तरकारी हुई ।

असमय की वर्षा धीरे-धीरे तेज हो गयी । षिविर में प्रीतमदास सो चुका है । दूर सुगन अपने बिस्तर पर लेटी है । उसके ऊपर बौझार आ रही है । हवा के झोंके से पानी का चपेटा उसे छू-छू लेता है । वह उठती है । बिस्तरे को दूसरी जगह ले जाती है । बिस्तरा ठण्डा लग रहा है ।

वह धीरे से सुबन्धु के पास जाती है । उसे हल्के से छूती है और उसके पास सो जाती है । दोनों बहुत देर तक उसी तरह दम साधे पड़े रहते हैं ।

सुबन्धु उसके कान में बहुत-बहुत हल्के से बोलता है — इतने धीरे से कि उनके ऊपर तनी हुई चादर न सुन सके, “यह धर्मयात्रा है, तुमने यात्रा के पहले जमुना-जल में खड़ी होकर कुछ नियम-व्रत लिये हैं ।”

सुगन चुप है ।

वह कुछ नहीं सुनना चाहती । महज उसकी सांसों तेज चल रही हैं । सुबन्धु के कण्ठ के पास सुगन का मुंह गड़ा है । उसकी गर्म सांसों उसे बेध रही हैं ।

कामवन की यात्रा जब पुरु हुई थी – तब सुगन ने इसी नियम-व्रत के सम्बन्ध में हल्के से कहा था, “जहां सच्चा प्रेम है, वहां कोई नियम-व्रत नहीं । वह स्वयं सबसे बड़ा नियम और व्रत है । जहां छल है, दुराव है, कपट है, असमानता है, नियम-व्रत-मर्यादा उसी सबके लिए है ।”

यह कहते हुए वह अजब ढंग से हंस पड़ी थी । सुबन्धु उसे देखता रह गया था । तब उस क्षण उसे हिरनमयी याद आयी थी । कपट, छल, दुराव, असमानता, ये सारे शब्द नंगे होकर उसके सामने खिंच गये थे ।

इस क्षण सुबन्धु को हिरनमयी की वह बात अपने सम्पूर्ण अर्थों के साथ याद आ रही है, “सुबन्धु, तुम सामने से क्यों नहीं आये ? तुम पीछे से क्यों आये ?”

अब तक के जीवन में सुबन्धु जिनसे मिला, जिन-जिन को प्यार किया, आज सब उसकी आंखों में आ बैठे हैं । वे वहां से हटते ही नहीं । इतनी भीड़ ! पर इस भीड़ में सुगन क्यों नहीं है ? सुगन उसे अंक से लगाकर सो गयी है । वह भीड़ नहीं है । उसके सारे कोमल, सुन्दर अंग-प्रत्यंग सुबन्धु में जैसे समा जाना चाहते हैं । सुबन्धु कठोर से कोमल होगा ... सुन्दर ...

सुन्दर तो इस दुनियां में केवल हिरनमयी है : किसी ने कहा था । सुबन्धु की आंखों में भीड़ लगी है । कहां-कहां से लोग उसमें आ बैठे हैं । कोई बैठा प्रश्न कर रहा है, तो कोई महज चुपचाप है । कोई बस तक रहा है ।

सुबन्धु इस यात्रा में केवल सुगन के कारण आया है ।

सुगन आज उसके अंक से लगी सो रही है । पर सुबन्धु की आंखों में बड़ी भीड़ है । वह उस भीड़ को घूर रहा है ।

उस भीड़ में से किसी ने पूछा, “हां, वह मां का मुख था – बिलकुल ठीक मां का मुख – तुम क्या ढूंढ रहे हो ?”

सुबन्धु अपने बिस्तर से उठ गया । बाहर वर्षा धीमी हो चली थी, सिर्फ फुहार पड़ रही थी । हवा की गति बदल गयी थी ।

पतितराम का बोल सुनाई पड़ रहा है । वह किसी से बातें कर रहा है । कह रहा है – कि विचारकर देखो तो कहीं कुछ माया नहीं है – सब सच-ही-सच है ।

9

कामवन में ही उस दिन एक घंटे से ऊपर सूर्य चढ़ आया था । रात की वर्षा के कारण सब कुछ गड़बड़ हो गया था । पर रास्ता सूखा है, साफ है । कामवन से अब बरसाना – वही राधा गांव ... वही लाडलीपुरा ।

यात्रा में एक आये हैं दुर्गन्ध बाबा – गढ़वाल के संन्यासी । उनके बदन से हरदम दुर्गन्धि निकलती है । उनके आसपास कोई नहीं चलता । सबसे अलग वे चलते हैं । जो उनके पास आने की कोषिष करता है – उसे वे फट से गाली देते हैं । आज यात्रा की पुरुआत में ही दौड़कर उनका पैर छू लिया है रमोली चौबाइन ने । तब से दुर्गन्ध बाबा बहुत ही ज्यादा बिगड़े हुए हैं । बड़ी भद्दी- भद्दी गालियां दे रहे हैं ।

पतितराम उन्हें समझा रहा है, “बाबा, माफ करो । हर औरत माया नहीं होती ।” दुर्गन्ध बाबा पतितराम को भी गाली दे रहे हैं । रमोली चौबाइन के साथ जो पुरुष है, उसके बदन पर कोढ़ फूट रहा है । रमोली चौबाइन इसी की है । यह गोसाईं किसी जमाने में बहुत बड़ा आदमी था । कहते हैं, रमोली की मां के सम्बन्ध इसी गोसाईं से थे । तब रमोली बहुत छोटी थी । मां गोसाईं के लिए भोजन-नाश्ता बनाकर इसी के हाथ भेजती थी । रमोली बड़ी हुई । गोसाईं ने काफी धन लगाकर इसकी शादी की । तभी रमोली की मां का स्वर्गवास हुआ । गोसाईं एक दिन रोता हुआ रमोली के पैरों में गिर पड़ा । रमोली को दया आ गयी । तब से रमोली इसी गोसाईं की है ।

धीरे-धीरे गोसाईं की आदतें और खराब हुईं । जुआ खेलना शुरू किया इसने । सट्टेबाजी में बैठने लगा । बहुत ज्यादा पीने-खाने लगा । सारी जायदाद धीरे-धीरे हार गया और अन्त में इसके शरीर में फूटा कोढ़ । रमोली इसी की शान्ति के लिए यात्रा कर रही है । इसी के लिए इसने दुर्गन्ध बाबा के पैर छुए हैं । और बाबा उने घिना फोड़-फोड़कर गाली दे रहे हैं ।

पतितराम रमोली को धीरज बंधा रहा है, “सहो... सहना बहुत बड़ी तपस्या है । यही तीरथ-व्रत है ।”

रमोली कहती है, ‘गोसाईं जी को जो शान्ति नहीं मिलती । हरदम हाथ मल-मलकर पछताते रहते हैं ।’

मथुरा में एक एडवोकेट के घर रमोली आया का काम करती है । एडवोकेट कायस्थ हैं । रमोली इनके घर का खाना नहीं खाती । दोपहर जब होती है — गोसाईं मुंह पर कपड़ा रखे हुए दरवाजे पर आकर खड़ा हो जाता है । रमोली उसे घर के भीतर कर लेती है । अपना खाना उसे खिला देती है । गोसाईं फिर चला जाता है । दिन भर इधर-उधर घूमता है — कहीं बैठा रहता है । रात का भोजन एक कागज में लपेटे हुए रमोली घर आती है । जमुना तट के ऊपर उसी एक कोठरी में । वह भोजन फिर गोसाईं खाता है । रमोली तब अपने लिए एक सूखी रोटी बनाती है ।

पतितराम गोसाईं से कहता है, “रमोली को तुम क्या समझते हो ?”

गोसाईं जवाब देता है, “कुछ तो नहीं ।”

“अपने को क्या समझते हो ?”

“सबसे बड़ा अभाग ।”

पतितराम ठहाका मारकर हंसता है । एक कुछ नहीं, एक अभाग । वह कहता है, “गोसाईं जी, इसी ‘कुछ नहीं’ में से ही बदकिस्मती पैदा होती है । रमोली कुछ नहीं है तो भगवान क्या है... कैसा है ? और यात्रा तुम्हारी नहीं है, उसी रमोली की है — जो दुर्गन्ध बाबा से गाली सह रही है ।”

गोसाईं पतितराम को डांट देता है, “चुप रह ! तेरे जैसे चार नौकर मेरे यहां दौड़ते रहते थे ।”

“और अब यह रमोली चौबाइन ?”

गोसाईं का मुंह गुस्से से लाल हो आया है ।

पतितराम बड़ा बेहया है । कहता है, “रमोली न तुम्हारी पत्नी है, न औरत है, न किसी की मां है... तभी तुम भिखारी हो ।” गोसाईं मारने दौड़ता है । रमोली बीच में खड़ी हो जाती है ।

‘कुछ नहीं से बदकिस्मती शुरू होती है’, सुबन्धु पतितराम की इस बात से जैसे कहीं टंग जाता है । सुबन्धु ‘कुछ नहीं’ को ही अपना सर्वस्व मानता है । इसी भाव ने उसे स्वस्थ किया है टी० बी० से । इसी भाव ने उसे निर्भय बनाया है ।

इसी से वह आज ठाठ से जी रहा है । न किसी की नौकरी, न चाकरी, न कोई जिम्मेदारी, न झंझट—जवाल, न कोई दुख—तकलीफ ! घर पर पड़ा आराम से खाता है — पिता से रुपये लेकर इधर—उधर घूमता है । दायित्वहीन, प्रश्नहीन । और सबकी आलोचना करता है । सब कुछ को 'नहीं—नहीं' के तीर से बंधकर छोड़ देता है । सब कुछ उसके लिए है, और वह किसी के लिए नहीं ' ' ' वह सिर्फ 'मैं' है और वह 'मैं' सबसे बड़ा है ।

हिरनमयी आज चुप घूमकर पीछे देख रही है । सुबन्धु कहीं पीछे चल रहा है ।

यात्रा चल रही है । सुबन्धु और हिरनमयी पास—पास आ गये हैं । दोनों की दृष्टि एक—दूसरे से मिल जाती है । हिरनमयी उसे अपने पास बुलाती है । वह नहीं जाता । वह फिर बुलाती है — इस बार नाम लेकर ।

पति पुभ्रांषु पूछता है, "यह कौन आदमी है ?"

हिरन बताती है, "एक यात्री है ।"

"यह इतनी अच्छी बंगला कैसे बोल लेता है ?"

"पढ़ा है ' ' ' विद्वान है ।"

"तुम इसे पहले से जानती थीं ?"

"हूँ । जहां मैं पढ़त थी, वहीं इससे एक बार भेंट हुई थी ।"

हिरनमयी के मुंह से सहज ही यह परिचय बोध निकल पड़ा । पति को संग लिए हुए हिरनमयी सुबन्धु के पास आ गयी । पति ने बड़े आनन्द के साथ सुबन्धु से हाथ मिलाया, जैसे सुबन्धु से पहली बार भेंट हो रही हो ।

सुबन्धु समझ गया — हिरन ने पति को मेरा कुछ परिचय दिया होगा । पर सुबन्धु अब जरा भी उनके समीप नहीं जाना चाहता । सुबन्धु का विष्वास है — जब तक आप उस मनुष्य को जानते नहीं, तभी तक आप उसके संग रह सकते हैं ।

पति सुबन्धु से इधर—उधर की बातें करना चाहता है, पर सुबन्धु महज 'हां—हूँ' करके रह जाता है । इस बच जब भी हिरनमयी उनकी ओर देखती है, सुबन्धु एक पल के लिए अपनी आंखें मूंद लेता है ।

यात्रा चल रही है । पतितराम जैजैवन्ती से कहता है, "यह यात्रा उसी के लिए है, जो कहीं जीवन में यात्रा करना चाहता है । गीता का वही अर्थ जानता है, जो किसी युद्ध में फंसा है । पर जिसमें कोई युद्ध ही नहीं है, संघर्ष ही नहीं है, उसके लिए कृष्ण और अर्जुन सिर्फ एक कथा—कहानी हैं, बांसुरी एक बाजा है और रासलीला एक नाज है ।"

जैजैवन्ती पूछती है पतितराम से, "तुम्हारा युद्ध क्या है ?"

पतितराम बताता है, "मेरा युद्ध मेरे जीवन के लिए है । मैं इस जीवन को किसके लिए जियूँ ?"

"क्या यह जीवन अपने लिए नहीं जिया जाता ?"

जैजैवन्ती के इस प्रश्न से पतितराम मुसकराने लगता है, "जीवन अपने लिए तभी जिया जा सकता है, जब इसके लिए कोई दूसरा बहाना हो । कुछ और हो, जो इसके बहाने पाया जा सके । जब तक यह दूसरा न हो, तब तक अपने पहले का कोई मतलब नहीं होता । इसी दूसरे के लिए ही मनुष्य साधु बनता है, घर बसाता है, त्यागी होता है, नौकर होता है, गुलाम और षासक बनता है । यहां तक कि आदमी चोरी करता है, अपराध करता है ।"

जैजैवन्ती पतितराम की बात नहीं समझ पाती । उसका बच्चा राहुल खेलकूद की बात करता है । चिड़ियों के नाम पूछता है । वह पतितराम से कोई कहानी सुनना चाहता है । वह बार-बार पूछता है, वे कहां जा रहे हैं ?

पतितराम बताता है "मेला देखने, नाच देखने ।"

पर रात को जहां यात्रा खत्म होती है, जहां नाच-गाने होने लगते हैं, वहां राहुल थककर सो जाता है । सच, इस यात्रा में उसे क्या मिलता है ?

हिरनमयी सुबन्धु के साथ चल रही है । पास में वह सुगन भी है । वह सुगन को थोड़ा दूर रखकर सुबन्धु से कुछ बात करना चाहती है । पर सुगन सुबन्धु का हाथ पकड़ चल रही है । हिरनमयी ने सुबन्धु का इस तरह से कभी हाथ नहीं पकड़ा था । वह कभी भी इस तरह से नहीं चली थी । सुबन्धु षायद उसे यह दिखाना चाहता है । वह देख रही है — उसे पूरी तरह से याद आ रहा है — सुबन्धु ने कहा था, 'षब्दों से नहीं, बोलकर भी नहीं, इससे भी बड़े माध्यम से, कि क्या मैं तुम्हारे जीवन से उत्पन्न षून्य को भर नहीं सकता ? किसी की जगह खुद नहीं आ सकता ?' उसने इसका बहुत ही स्पष्ट उत्तर दिया था । और उस उत्तर के बहुत पीछे बिना किसी षब्द के एक बात उठी थी, 'कोई किसी की जगह नहीं आता, वह खुद अपनी जगह बनाकर आता है । इसमें कोई दान नहीं देता — लेने वाला जबरदस्ती बिना मांगे ही ले लेता है ।' हिरनमयी सोचती है : पर वह रास्ता सुबन्धु का नहीं था, सुबन्धु था विनय, श्रद्धा और सेवा का पथ । यही वह था । इसमें वह जबरदस्ती ले लेने की षक्ति नहीं होती, इसमें सिर्फ एक अपेक्षा होती है, आषा और कल्पना होती है । और जब यह पूरी नहीं होती, तो वह आदमी चुपचाप टूट जाता है । तब वह अपने ही भीतर वह विष बो लेता है, अपने भीतर ही वह आग लगा लेता है, जिससे सब कुछ नष्ट होकर खाक स्पष्ट हो जाता है । वह समझता है उसका विनय, श्रद्धा, सेवा, प्यार उसकी निर्बलता थी और वह उसके लिए अपने-आपसे ही बदला लेता है । सुबन्धु प्रसन्न है आज । बहुत प्रसन्न ...

सुगन उससे भी ज्यादा प्रसन्न है उसके संग ।

दोनों प्रेम करते हैं — सम्पूर्ण प्रेम । इसमें कहीं कोई असमानता नहीं, कोई गांठ नहीं ।

कामवन से बरसाना के बीच एक जगह है मोरकुटी — दोपहर को यह यात्रा वहां पहुंचेगी । एक सेठ वहां दीन-दुखियों को दान देंगे । मोरकुटी अभी दूर है । चार पहर दिन चढ़ आया है । दीन, साधू-सन्त, दुखी-गरीब प्रजा मोरकुटी की ओर भागी जा रही है । आज यात्रा में राधा-कृष्ण की जैजैकार नहीं है । उतने-उतने कण्ठों से आज पद और भजन नहीं गाये जा रहे हैं । संकीर्तन आज क्षीण है । यात्रा में जैसे यथार्थ आ घुसा है कहीं से ।

लुंजू पटेल राधाबाई से कहता है, "वह दान नहीं लेगा किसी से ! वह दीन-दुखिया नहीं है ।"

राधाबाई कहती है, "दान तो कृष्ण ने लिया था गोपियों से !" लुंजू पटेल हंसता है, "तो मैं कृष्ण हूं क्या ! ... मैं इतना बेवकूफ नहीं कि अपने का कृष्ण समझूं । मैं सीधे से लुंजू पटेल हूं । लुंजू ... और यह भी तो समझो, राधाबाई, वे दान देने वाली गोपियां थीं ..."

कोई सेठ—महाजन नहीं । वह दान प्रेम का था, यह दान दया का है । उस दान में मिलन था, इस दान में बदला है । घुमाव है । फेर है ।” राधाबाई पूछती है, “तो यह श्रीमद्भागवत क्या है ?”

“यह महाभाव है जो हम यहां जीने आए हैं । अपने यथार्थ से ऊपर उठकर । जो हमारी असली रूप है, प्रेम का, समानता का, निष्कलता का, सुन्दर का, उसी का हम यहां दर्शन करने आए हैं । उसी को जीने । वही जीने यहां कृष्ण भी आये थे ।”

उसी समय दायीं ओर यात्रियों की भीड़ सहसा थम गयी । लोग चिल्ला उठे । किसी औरत की करुण चीख वातावरण को कांपने लगी । कोई चलते—चलते मर गया । हार्टफेल !

“कौन है भाई ? कौन मरा इस यात्रा में ?”

“वही रमोली का मरद ।”

किसी ने फिर भी पूछा, “किसका इस तरह इन्तकाल हुआ ?”

दूरगामी पर गोस्वामी महाराज की आवाज उभरने लगी । पुलिस दौड़ी । लाश को पुलिस संभाल रही है ।

पतितराम के मुंह से निकला, “पता नहीं कौन साला मरा ! मरने को उसे और समय न मिला ।”

जैजैवन्ती बोली, “स्वर्ग मिलेगा उसे । इस यात्रा में मरा है वह ।”

पतितराम बड़ी कुटिल हंसी हंसा, “सभी तो यात्रा में मरते हैं, कौन बिना यात्रा के मरता है !”

“हां, पर इसे स्वर्ग मिलेगा ।”

“स्वर्ग नहीं, लड्डू मिलेगा ! स्वर्ग—नरक दोनों इसी पृथ्वी पर हैं । वह नरक में तो था ही, अब स्वर्ग उसे कहां मिलेगा ?”

स्वास्थ्य—विभाग वाले गोसाईं की लाश को जलाने का प्रबन्ध कर रहे हैं । रमोली छाती पीट—पीटकर महज रो रही है । पतितराम कहता है, ‘कितना बड़ा पाखण्ड है यह ! अरे, भीतर से तो चौबाइन खुष है, पर दुनिया के लिए बेचारी को बेमतलब रोना पड़ रहा है ।’

जैजैवन्ती डांटती है, “तुझे क्या बूझ—विचार !”

पतितराम हंसकर चुप रह जाता है । गोसाईं की लाश स्ट्रेचर पर लादे हुए स्वास्थ्य—विभाग वाले ले जा रहे हैं । यात्रा इसके लिए जरा भी नहीं थम रही है । बहुत—से लोगों को पता भी नहीं है, कि उन्हीं के बीच से कोई मरा है । हर क्षण तो न जाने कितने मरते हैं, कौन किसके लिए रूकता है !

यात्रा चल रही है । रमोली की मां भी तो इसी तरह चलते—चलते मरी थी । सुबह के वक्त जमुना से नहाकर घर आ रही थी । गली में एक सांड ने उसके पेट में सींग से मारा था । सारा पेट फटकर उसी बतासावाली गली में पसर गया था । वह वहीं अपने ही खून में डूबकर मर गयी थी । यह उसका मरद उस समय षराब पिये अपने घर में धुत्त था ।

मुहल्ले वालों ने जब उसे खबर दी, तो वह बोला, “ले जाकर फेंक दो जमुना में ।”

इस दुनिया की यात्रा इसी तरह चलती है । इसमें स्वर्ग—नरक कहां ?

पतितराम कन्धे पर बहंगी संभाले रमोली के पास गया । उसके सिर पर हाथ रखकर बोला, “खतम कर, अब बहुत रो चुकी । पुलिस और स्वास्थ्य-विभाग वाले उस लाश को फूंक-फांक देंगे, तू चल अपनी यात्रा पर !”

रमोली ने आसूं भरे मुंह से पतितराम की ओर निहारा ।

“चल, उठ !” पतितराम ने कहा ।

“अब किसलिए चलूं ? किसके सहारे ... क्यों ?”

“सिर्फ यही जानने के लिए ।”

“जिसके साथ इतने जीवन तक थी, उसे कैसे छोड़ दूं ?”

“जैसे उसने छोड़ा तुम्हें ।”

“उसने तो मरकर छोड़ा है ।”

“हां, इसीलिए ताकि तुम जी सको ।”

पतितराम उसे समझाता हुआ चला, “देखो न, यात्रा कहां रुकती है ? सारे लोग तो चले जा रहे हैं । जब नहीं बचा, तभी तो नये सिरे से फिर जीना ही चाहिए ।”

श्रमोली चलते-चलते रुक गयी । लाश, अगले गांव के पास से जो छोटी-सी नदी बहती है, उसके किनारे फूंकी जाएगी । रमोली चिता को आग देगी । अपनी ओर से नहीं, मां का ऋण तो चुकाना ही होगा ।

ष्षमण पर दो पुलिस वाले हैं, चार स्वास्थ्य-विभाग वाले । षेष वही रमोली है और कन्धे पर बहंगी लिए हुए वही पतितराम । गोसाईं को फूंककर उसकी राख का इन्तजार करते-करते दोपहर हो गयी ।

यात्रा अब तक मोरकुटी पहुंच गयी होगी । पतितराम, रमोली, दोनों सिपाही, चारों स्वास्थ्य-विभाग वाले – सब बड़ी तेजी से बढ़ रहे हैं – यात्रा में पहुंच जाने के लिए ।

मोरकुटी में पहुंचकर पतितराम ने देखा – दुखी-गरीबों की अपार भीड़ लगी है । जैसे आधा हिन्दुस्तान ही भिखारी और गरीब है । सेठ ट्रक में दान का सामान लदाये हुए अपने आदमियों के साथ के साथ वहां मौजूद है । लोगों की अपार भीड़ पंक्तियों में बैठ गयी है । सेठ अपने हाथ से एक-एक को दान दे रहे हैं – एक धोती, एक कम्बल, एक लोटा और पांच-पांच रूपये ।

भीड़ जैजैकार कर रही है दाता की ।

पतितराम को हंसी छूट रही है । लोग उसे डांट रहे हैं ।

बरसाने के लिए यात्रा चल रही है । बरसाने के पास कोई नदी नहीं बहती । नवद्वीप के पास गंगा नदी बहती है । हिरनमयी को वही नवद्वीप याद आ रहा है । वह जब बच्ची थी, उसी गंगा में नहाती थी । फिर मां के साथ गंगाजल लिए हुए, फूल, पत्र और अक्षत संभाले कृष्ण के मन्दिर जाती थी । मां राधाकृष्ण की मूर्ति के सामने जल, पुष्प-अक्षत चढ़ाकर न जाने क्यों आंखें मूंदे रोती थी । हिरन ने एक बार मां से पूछा था, “मां, तुम मन्दिर में क्यों रोती हो ?”

मां ने बताया था, “कृष्ण और राधा के लिए ।”

“क्यों ?”

“उसी आसू के जमुना तट पर वे दोनों खड़े होते हैं ।”

“तब ?”

“तब कृष्ण एकाएक चले जाते हैं और राधा वहीं जमुना तट पर खड़ी रह जाती है ।”

“अकेली राधा कब तक वहां खड़ी रहती है ?”

“हरदम – हमेष–हमेषा ।”

“आज भी अब भी ?”

“हां, आज भी, अब भी !”

“कृष्ण क्यों चले जाते हैं, मां ?”

“उन्हें जाना पड़ा था ।”

“कहां ?”

“मथुरा मथुरा से कुरुक्षेत्र और वहां से द्वारका ”

“मां, सुनो, राधा क्यों नहीं चली गयीं मथुरा कुरुक्षेत्र और द्वारका ?”

“राधा के पैरों में कृष्ण ने कमल की पंखुड़ियों की बेड़ी लगा दी थी और हाथों में बांसुरी की धुन की हथकड़ी ।”

“बड़े बुरे थे कृष्ण !”

“राधा भी बुरी थी, बेटी ! उन्होंने भी कृष्ण को अपने अंगराग से हथकड़ी–बेड़ी पहना दी थी । इस तरह कृष्ण राधा के पास से दूर जाकर भी सदा उनके पास थे !”

“राधा और कृष्ण की षादी क्यों नहीं हुई मां, ?”

“क्योंकि दोनों प्रेम करते थे । इसीलिए जब मैं रोती हूं तब वे आसू के जमुना तट पर फिर आकर खड़े हो जाते हैं ।”

हिरनमयी के वे अटपटे प्रश्न, मां के वे अजब उत्तर आज उसकी समझ में आ रहे हैं । हिरनमयी के अन्तर्मन में जो नन्ही–सी हिरन है, वह भी आज उसी तरह के प्रश्न करती है, षिषुवत्, अटपटे और हिरनमयी उसे उत्तर देती है ।

यात्रा चल रही है, बरसाना आने को है । आज चार बजते–बजते ही यात्रा वहां पहुंच जायेगी । बरसाना राधागांव लाड़लीपुरा ! हिरनमयी गा रही है :

राधा राधा राधा

देवसि फुरावल अवहुम जावब

विरह तापं तब अवहुं घुचावब

कुंज वाट पर अवहुम धाइब

सब कुछ टुटइब बाधा !

लुंजू पटेल की ब्रज में यह पांचवीं यात्रा है । वह चार बार और आ चुका है । राधाबाई से वह बताता है कि बरसाना के दायें एक सफेद पहाड़ी है, बायें प्याम पर्वत है ।

लुंजू पटेल कभी उन पहाड़ियों पर नहीं चढ़ पाया है । उसने नीचे से उन्हें निहारा है — हर बार निहारा है । प्याम पर्वत पर कृष्ण अपने गोप सखाओं के साथ होली खेलने आये थे । सफेद पर्वत पर राधा अपनी सखियों के संग आयी थीं । यहीं पर तब वह महाहोली मनायी गयी थी । यहीं कृष्ण पिटे थे गोपियों के हाथ । यहीं कृष्ण को राधा का रूप धारण करना पड़ा था । राधा बनी थीं कृष्ण । तब कृष्ण को दान दिया था राधा ने, कृष्ण के वेष में । अजब है यह लाडली लीला ।

बरसाना समीप आ गया है । सफेद पर्वत पर बना वह राधा मन्दिर यहीं से दिख रहा है । उज्ज्वल, संगमरमर का गीत जैसा मन्दिर । सबसे ऊंची चोटी पर राधा मन्दिर ।

“वह दूसरा बड़ा मन्दिर किसका है ?” हिरनमयी पूछती है ।

लुंजू पटेल बताता है, “वह भी राधा मन्दिर है । महाराजा जयपुर का बनवाया हुआ । पर उसमें राधा की प्रतिमा नहीं है ।”

“क्यों ?”

लुंजू पटेल बताता है, “ढाई लाख रुपये खर्च करके महाराज जयपुर ने दस वर्षों में यह मन्दिर बनवाया । उसमें राधा की मूर्ति स्थापित की गयी । दूसरे दिन देखा गया — राधा वहां से गायब । इस तरह से बहुत कोषिषे की गयीं, पर राधा उस मंदिर में नहीं गयीं । अब उस मन्दिर में केवल कृष्ण की मूर्ति है, राधाविहीन कृष्ण ।”

बरसाना के पूरब, उस लम्बे-चौड़े मैदान में यात्रा का पड़ाव मिला । अकेली हिरनमयी, वहां से दौड़ती हुई, बरसाना गांव पार करती हुई ब्रह्माचल पर चढ़ जाती है । उसकी सांस फूलने लगी है । वह राधा मंदिर के आंगन में आती-आती वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है ।

उसे जब होष होता है, तब वह देखती है — वह उसी राधा मन्दिर में ही है । उसके सामने राधा की संध्या आरती हो रही है । लोग आरती गा रहे हैं । पखावज, झांझ और वेनु बज रहे हैं । हिरनमयी पर धीरे-धीरे मूर्च्छा घिर रही है, उसी मूर्च्छा की गत में उसके होंठों से एक अजब गीत फूटता है ... जो न आरती है, न भजन है, न पूजा-अर्चना है ।

गगन सघन अब तिमिर मगन अब
तड़ित चकित अति घोर मेघ रब
षाल ताल तरु समय तवध
सब पंथ विजन अति घोरे
एकली जावब तुझ अभिसारे
जरव पिया तुहं कि भय तहारे
भय बाधा सब अभय मूर्ति घर
पंथ दिखायब मोर ...

गीत थमता ही नहीं । जैसे उज्ज्वल पर्वत से कोई झरना फूट रहा हो । आंखों में वहीं आंसू । आंसू के जमुना तट पर वही राधाकृष्ण खड़े हैं । हिरनमयी से हिरन पूछ रही है, “मां, तुम क्यों रो रही हो ?”

हिरनमयी निरुत्तर है । मन्दिर से बाहर निकलकर वह वन की ओर जाती है — सच एक ओर सफेद पर्वत है, सामने प्याम पर्वत ' ' ' इसके पीछे वह चिकसौली गांव है ।

राधा की प्राणप्रिय सखी चित्ररेखा इसी गांव की थीं ।

हिरनमयी सफेद पहाड़ी पर बढ़ रही है। अब उसके पैर बेहद थक गये हैं । उससे चला नहीं जा रहा है । मूर्च्छा जैसे गयी नहीं है ।

वह देखती है — प्याम पहाड़ी से सुबन्धु और सुगन नीचे उतर रहे हैं । ये दोनों उस संकरी गली की ओर जा रहे हैं, जहां प्याम और सफेद चोटियां एक-दूसरे से मिल रही हैं ।

10

राधा गांव में बरसाना की ही रासपार्टी थी । क्या अद्भुत रासलीला ! मनसुखा जो बना था, गजब का 'कमेडियन' था वह । हंसाते-हंसाते लोगों के पेट दुखा दिये उसने । रामलीला जब पुरु ही हुई थी, तब उसने सिर पर बड़ा-सा पगगड़ बांधकर, आंखों पर चष्मा लगाते हुए कहा, "यह फिलिम नहीं है, जरा कलेजे पर हाथ रख लीजियो ।"

मनसुखा को बड़े समाजी ने कसकर डांटा था, "तू का कर रहो है ? चलो पीछे ' ' ' !" फिर गायक ने जो गीत गाना पुरु किया, सुनने वाले उस सुर-ताल और बोल में जैसे बन्द हो गये ।

करूं मैं राधे का आराधन

यह जप जोग यही साधन

आराधिका है मन राधा

राधिके कृष्ण, कृष्ण राधा ' ' ' "

रासलीला आदि से अन्त तक केवल कृष्ण से और राधा के संग हुई थी । रास में एक ऐसा दृष्य उपस्थित होता है कि रास करते-करते एक जगह राधा कृष्ण से रूठ जाती है । राधा धीरे-धीरे अपना सारा अंग छिपा लेती है । केवल उनकी आंखें ही शेष रह जाती है । केवल आंखें ।

कृष्ण उन्हीं आंखों से पूछते हैं, "राधा कहां है ?" राधा राधा राधा ! आंखें केवल खिंची हुई हैं । उनमें कोई उत्तर नहीं है । उत्तर माने शरीर । पर शरीर तो अदृष्य है । समाजी गाता है : यथाऽबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवै ' ' ' जैसे मूर्ख मनुष्य पैवाल से ढके हुए जल को छोड़कर मृगतृष्णा के लिए दौड़ता है, वैसे मैं भी माया से ढके हुए आपको छोड़कर देह में मन लगाकर दौड़ता हूं ।"

दिख रही है केवल आंखें-ही-आंखें ! राधा की आंखें !

हिरनमयी को केवल वहां आंख ही दिख रही है । इसी आंख में पूरी सृष्टि ' ' ' वे दिन ' ' ' वे क्षण ?

यात्रा बरसाना से संकेतवन होती नन्दगांव की ओर जाने को है । पहले है संकेतवन । लुंजू पटेल राधाबाई को बताता है, "जब वहां केवल आंखें ही खिंची रह गयीं, तब कृष्ण बेहाल हो गये ' ' ' बिलकुल निरुत्तर । तब उन आंखों में एक संकेत उभरा था — आंख में ही सारा शरीर है । इस संकेत से कृष्ण प्रसन्न हुए थे । तब उन्होंने भी संकेत किया था

अपनी आंखों से – मेरी आंख मेरे शरीर में है – और उसी आंख में मेरा मन है । इस संकेत के उपरांत फिर दोनों का मिलन हुआ ।”

रासपार्टी में जो लड़का कृष्ण बनता है, जो लड़का राधा बनता है – वे दोनों जब तक रास के मंच पर अपनी भूमिका में रहते हैं, सारे यात्री – लखपति से करोड़पति तक तब तक उनके पैर छूते हैं ! और जब सुबह यात्रा आगे बढ़ती है, तब वे दोनों लड़के वही सामान्य लड़के हो जाते हैं तब उन्हें कोई नहीं पूछता ।

पतितराम कहता है, “चारों ओर ऐसा ही होता है । यही जगत् की रीति है ।”

यात्रा में एक आए हैं भार्गव साहब । ये पहले बड़े नेता रह चुके हैं । एक दिन इनसे और शुभ्रांशु मुखोपाध्याय से बातचीत चली थी इसी प्रसंग में । पीछे-पीछे उनकी बातें सुन रहा था वही पतितराम ।

भार्गव साहब ने कहा, “जो पूज्य है, वही पूजा जा सकता है। और यह उचित भी है ।”

शुभ्रांशु ने पूछा, “पूज्य कौन है ?”

“वही जो अधिकार प्राप्त है ।”

“इसके मानो – पूज्य अधिकार है, मनुष्य नहीं !”

दोनों लोग हो-हो-हो-हो करके हंस पड़े । तभी पतितराम बोला, “पूजा की बात छोड़िए साहेब, इज्जत की बात सोचिए !”

“कैसी इज्जत ?” भार्गव साहब ने पूछा ।

“मनुष्य केवल मनुष्य की इज्जत करेगा भला ?”

दोनों लोग फिर हंसने लगे थे । संकेत वन होकर यात्रा नन्दगांव की ओर बढ़ रही थी ।

सुबन्धु की यात्रा बार-बार टूटी थी । पहली नौकरी उसने एक बड़े नगर में की थी – एक कॉलेज में इतिहास का अध्यापक । एक साल तक किसी तरह नौकरी चली । अगले वर्ष प्रिंसिपल से झगड़ा हो गया, और उसे नौकरी छोड़नी पड़ी ।

दूसरी नौकरी उसने की एक शहर में । दफ्तर में क्लर्क । वह भी नहीं चली उससे ।

तब से वह पिता के साथ चेतलाष्यामगंज में रहता है । पिछले तीन वर्षों से वह सुगन के घर आने-जाने लगा । सुगन बी० ए० पास करके जब से उस घर में बहू बनी है, तब से वह अकेला वहीं पड़ी रहती थी । पति का अपना बड़ा काम-काज है । व्यापार का, उद्योग का । वह दिन-रात उसी में लगा रहता है ।

घर में अकेली सुगन की बड़ी समस्या थी – कुछ न करने की । बेकार रहने की । सुबन्धु की ओर वह इसी नाते विषेष रूप से आकर्षित हुई थी । एक आकर्षण और भी था सुबन्धु के प्रति – सुबन्धु कभी-कभी कुछ लिखता था तब । कभी कहानी, कभी कोई कविता । वे तब उस समय कइ अच्छी पत्र-पत्रिकाओं में छपती थीं । सुगन उसे पढ़कर बहुत सुखी होती थी । इसी कहानी के माध्यम के उसने तब जाना था ‘‘ सुबन्धु का प्रेम एक लड़की से हुआ था, उससे इसका ब्याह भी तै हुआ था, पर एकाएक उस लड़की की मृत्यु से उसके जीवन में इतना भंयकर उत्पात हुआ था । टी० बी०, फिर उसी की हताशा। यह भी एक आकर्षण था सुबन्धु के प्रति उसका । यद्यपि तब सुबन्धु ने कहा था, “जो मेरी कहानी

है वह मेरी छलना भी तो हो सकती है ! जो सच है, क्या कभी उसकी कहानी बन सकती है ! लिखकर, रचना कर मनुष्य क्या अपने-आपको छलता नहीं ?”

“पता नहीं, “सुगन ने कहा था ।

और तब सुगन ने भी सुबन्धु की प्रेरणा से पहली बार एक कहानी लिखी थी । कहानी का विषय था – एक नव-ब्याहता स्त्री एक ऐसे पुरुष से प्रेम करने लगती है जिसका प्रेमिका मर गई है, और जिसे वह भूल चुका है ।

सुबन्धु इसी सूत्र में सुगन से तब से बंधा है । सुगन का पति भी इसे बहुत अच्छा समझता है कि सुगन सुबन्धु की प्रेरणा से कुछ लिखे, कहीं व्यस्त रखे अपने-आपको !

यात्रा में सुगन से ये सारी बातें हिरनमयी ने सुनी थीं । कभी कुछ सुबन्धु के बारे में जिज्ञासावष पूछकर, कभी यूं ही सुगन से सुनकर ।

आज की यात्रा में हिरनमयी सुबन्धु से पूछ बैठी, “तुम कहां से इतना सब झूठ बोलने लगे ?”

“तुम क्या सच बोलती हो ?”

“उतना झूठ जरूर बोलती हूं, जिसे अकारण किसी का अजित न हो ।”

“मैं भी उतना ही झूठ जरूर बोलता हूं, जिससे अकारण मेरा अहित न हो ।”

“तुम महज अब अपने ही हित-अहित की बात सोचते हो ?”

“जरूर ! और अब मैं इसी को अपना परम सत्य मानता हूं ।”

“ऐसा क्यों ?”

सुबन्धु नफरत से बोला, “क्या बेकार के प्रश्न करती हो ? मैं बिलकुल नहीं चाहता कि तुम मुझसे अब कोई प्रश्न करो”
“या मेरे सामने आओ !”

हिरनमयी बोली, “पर तुम जो बार-बार मेरे सामने आते हो !”

“तभी तो उस दिन इस यात्रा से मैं वापस चला जा रहा था । तभी तो उस दिन से मेरे झूठ सौगुने बढ़ गए हैं । तुम हो झूठ की जड़ ! तुम हो झूठ !”

हिरनमयी चुप हो गई । सुबन्धु आवेष में आ गया था । वह प्रतीक्षा कर रही थी कि सुबन्धु जब सहज हो, तो वह उससे कुछ और बात करे । बिलकुल ही कुछ और बात ... जैसे दो अपरिचित किसी यात्रा में सहसा संयोग से मिलकर बातें करते हैं । किन्तु सुबन्धु फिर बोल पड़ा, “बंगाल की उस अन्तिम यात्रा के बाद तुम कभी भी मेरे सामने नहीं आयीं, वह सुबन्धु मर गया, वह हिरन मर गयी !”

“और यह नया सुबन्धु ? और यह नयी हिरन ... !”

“क्या मतलब ?”

“यही कि क्या ये दो नये अपरिचित लोग आपस में कोई बात नहीं कर सकते ?”

“वही सब पिछला फिर दुहराने के लिए ? इस बार और भी दुगुने झूठ के साथ ?”

हिरनमयी रोने लगी । अपने-आपको उस पूरी यात्रा से, सबसे छिपाती हुई वह रो पड़ी । भीतर से उमड़ते हुए आंसू को वह पीने लगी । वह नहीं चाहती कि सुबन्धु आंसुओं को देखे । षायद इन्हीं आंसुओं ने ही सुबन्धु को छला था पहली बार ।

हिरन अपने-आपको संभालकर बोली, "पर सुबन्धु, मैं तो और कुछ भी नहीं जानती । सिफ इतना ही जानती हूँ — जो कुछ भी सुन्दर पवित्र क्षण इस जीवन में मैंने जिए हैं, वहीं मैं हूँ । वही मेरा मन है ... वहीं मैं हूँ । इस यात्रा में मैं वही जीने आयी हूँ ।"

"उदात्तीकरण !"

सुबन्धु कटुता से हंस पड़ा, "मैं उदात्तीकरण नहीं जानता । मैं तो सिर्फ अभाव हूँ ... और इस अभाव के मूल में तुम हो !"

"अब कुछ फायदा नहीं ! जो कुछ होने को था, वह सब हो गया । वह सब बीत गया । मैंने उसके बाद बहुत दुनिया देखी है, बहुत ... बहुत ..."

कुछ देर बाद हिरन बोली, "सुबन्धु, तुमने तब से बहुत दुनिया देखी है, अच्छा तुमने कभी ऐसी भी औरत देखी है, जो अपना खाना भूल जाती है, सोना और उठना भूल जाती है, फिर भी जो अपना घर-गृहस्थी चलाती है और अपने पति को खुष-सन्तुष्ट रखती है ... स्वयं भी सुखी और सन्तुष्ट रहती है !"

पता नहीं ! तुम्ही जानो-देखो उसे !"

सुबन्धु चुपचाप हिरनमयी के संग चल रहा है । नन्दगांव अभी दूर है । बरसाना के राधा-मन्दिर में गत रात जो कुछ बीता है, क्या वह कभी शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ? असम्भव ! हिरनमयी ने न रास देखा, न वह यात्रा-गिरोह में रही । वह रात भर उसी राधा मन्दिर में बैठी रही ... बैठी रही । मन्दिर बन्द करके पुजारी जब जाने लगे, तब उन्होंने हिरनमयी से कहा, "अब आप जाइए, मन्दिर बन्द हो रहा है ।" हिरनमयी ने कहा, "मैं इसी आंगन में रहूंगी ।" पुजारी को तब बहुत आश्चर्य हुआ था । तन्मयता के जो क्षण, जो सहानुभूति हिरन को प्राप्त हुई थी, उसे और कौन जान सकता है ? मन्दिर के खम्भों को वह अपने अंक में भरे हुए वहां खड़ी रही, जैसे कदम के वृक्ष उसके ऊपर लहरा गये हैं । एक महान तृप्ति से वह भरती गयी हो । एक अद्भुत सन्तोष उसे मिला था उस सूने आंगन में । सुबह चार बजे, जब पुजारी के आने की आहट हुई, मन्दिर में झाड़ने-बुहारने की आवाज होने लगी, तब हिरन का वह मनरास जैसे खत्म हुआ । वह पोर-पोर में नषा लिए हुए मन्दिर की सीढ़ियों से तब नीचे उतरी थी — लड़खड़ाती हुई — पागल हिरनी-सी ।

सुबन्धु हंसता है हिरनमयी पर । कहता है, "यह ढोंग है, मात्र भावुकता का अभिनय । इसी अतिभावुकता का प्रमाण है — खून, हत्या, महामारी और अकाल । बंगाल में, कलकत्ता में इसी कारण वही इतिहास बार-बार दुहराता रहता है !"

सुबन्धु भी इसी का षिकार हुआ है ।

हिरनमयी सुबन्धु से कहती है, — "इतना कटु होकर जीवन को नहीं देखा जाता । उसी बंगाल और कलकत्ता में जो कुछ महान-महत घटा है, उपजा है, वैसा कहीं और भी हुआ है ? देश का इतिहास, संस्कृति के चरण वहीं से उठे हैं — ब्रह्मसमाज, थियोसॉफी, टैगोर, अरविन्द ... सुभाष और ... !"

सुबन्धु को यह सब सुनकर न जाने क्यों भय लगने लगता है । वह इस सब को भूल गया है । अब इन सबको वह नहीं सुनना चाहता । ये सब नाम तो दायित्व हैं । सुबन्धु को सब कुछ के बाद विस्मरण मिला है । अब क्या होगा सब फिर स्मरण करके !

सुबन्धु को याद आता है, मां ने कहा था, “बिना दायित्व और भावना के, व्यक्ति को उपलब्धि नहीं मिल सकती है !”

आज इस बात के स्मरण मात्र से सुबन्धु को भय लगता है । एक अज्ञात भय । मां की वही कही हुई बात आज हिरनमयी भी कहना चाह रही है । उसे दुगुना डर लग रहा है तभी । वह बातों-बातों में इससे आगे की भी बात कहती है, “तुम ऐसा क्यों नहीं सोचते, सुबन्धु, कि जो नहीं मिला, वही उपलब्धि है, और जो मिला है, वही दायित्व है हमारा !”

हिरनमयी आगे कहती है, “सोचो, सुबन्धु, मुझे ही क्या मिला । मिलते ही तो सब कुछ दूर हो गया, भाग गया सामने से । मिला केवल अभाव का अवसाद और उसकी जीवन-व्यापी कसक, पर मैं समझती हूँ कि संघर्ष को झेल लेता है । पर तुम . . . !” हिरन मूक-स्वरों से भी आंखों को सुबन्धु पर बिखेर देती है । सुबन्धु इसे सह नहीं पा रहा है । वह बार-बार उस यात्रा की भीड़ में अपने-आपको छिपा लेना चाहता है । पर फिर वही हिरनमयी बार-बार उसके सामने आ खड़ी होती है ।

वह कैसी यात्रा है ! कितनी निर्मम और कठिन यात्रा ! सुबन्धु इसके संघर्ष को नहीं झेल पा रहा है । उसने समझा था कि सुदीर्घ रात्रि अब समाप्त हो गयी है । उसके महादुख का अन्त ही जान पड़ा था उसे । लेकिन आज लग रहा है कि महानिद्रा में सोया हुआ सुबन्धु का वह सब जैसे जागृत हो रहा है । आज तक उस पूर्वषती से लेकर उत्तरषती के प्रथम दषक तक जितना समय व्यतीत हुआ था, वह उतना ही और भी स्पष्ट तथा गम्भीर होकर उसके सामने आ खड़ा हो रहा है । जैसे कोई षव जागृत हो रहा है ।

सुबन्धु भागता है हिरनमयी के पास से । वह यात्रा के बिलकुल पीछे चला जाता है । बिलकुल अकेला, निरुपाय-सा । एकाएक देखता है वह उसके साथ सुगन चल रही है । ममतामयी, प्रेममयी सुगन ! कितना विष्वास और अगाध स्नेह है उसमें सुबन्धु के प्रति !

एक दिन पतितराम ने अकेले चुपचाप सुगन के सहसा पैर छूकर अपने माथे लगाया था ।

सुगन ने पूछा था, “यह क्या रे ?”

पतितराम ने कहा, “बहू ! तुम धन्य हो । तुम उस सुबन्धु को इतना मानती हो ! पतिव्रता होकर उस सुबन्धु के प्रति तुम्हारी इतनी ममता !”

सुगन ने कहा था, “सुबन्धु, किसी स्त्री के कारण ही, उसके दिए हुए चोट, घाव कही ही वजह से आज ऐसा हुआ है, मैं भी एक स्त्री हूँ । सोचती हूँ कि मैं अपने माध्यम से उसे जीवन का नया अर्थ दूंगी । यही होगी मेरी साथर्कता . . . ”

पतितराम उस दिन सुगन बहू के पैरों पर गिर पड़ा था । उसे भी उस दिन मानो उसके निरुपाय जीवन का एक नया अर्थ मिला था । उसी आनन्द में उसने तभी उस दिन सुगन के घर की बहंगी अपने कन्धे पर उठायी थी । तभी उस दिन यात्रा की शुरुआत में उसने जैजैवन्ती के रोते हुए बालक - राहुल को अपने दूसरे कन्धे पर उठायी थी । विधवा जैजैवन्ती की उसने तब से सेवा शुरु की । तब से वह आये दिन जैजैवन्ती के कटु वचन भी सुन रह रहा है ।

एक दिन इसी यात्रा में संध्या समय पतितराम उसी राहुल के संग खेल रहा था । वह कोई कहानी कहता हुआ धीरे-धीरे राहुल के फूल जैसे पैरों को दबा रहा था । राहुल बेहद खुष । राहुल ने पूछा, “तुम्हारे कोई बच्चा नहीं है ?”

पतितराम का सहज ही सिर हिल गया, “नहीं ।”

राहुल खिलखिलाकर हंसते हुए बोला, “मैं जो हूँ ।”

पतितराम ने राहुल को उठाकर अपने अंक में भर लिया । उसके नन्हे-नन्हे चरणों से अपनी आंखें छूने लगा । तभी युगों बाद उसकी आंखों से सुख के आंसू बरसे थे । उस बंजर धरती पर जैसे किसी ने पहली बार हल चलाया हो ... पहली बार उस जुती हुई धरती पर आषाढ़ का पहला मूसलाधार पानी बरसा हो !

इस धरती की ओर संकेत किया, उसी सुगन बहू ने । इसे न आज तक किसी गुरु ने बताया था, न किसी धर्म-दर्शन ने, न किसी साधू-संन्यासी ने !

आज इस यात्रा में पतितराम ने धीरे से सुगन बहू से कहा, “एक बात पूछूं, बहू ? छिमा करना मुझे !”

“पूछो !”

“यह सुबन्धु बाबू भी आप से वैसा ही स्नेह भाव रखते हैं ?”

“जरूर रखते हैं । क्यों ?”

“यों ही मैंने पूछा ।”

और वह सुगन से अपने इस प्रश्न के लिए क्षमा-याचना करने लगा । पर पतितराम का मन न माना । उसने यही प्रश्न सुबन्धु से किया । पर सुबन्धु ने उसे डांट दिया, “तुम नौकर हो, नौकर की तरह रहो ! यह क्या बदतमीजी है कि तुम इस तरह के प्रश्न करो !”

पतितराम को बड़ा कष्ट हुआ था इससे । पर तभी उसे याद आया, ‘सहते जाना भी एक तपस्या है । जो इसे पार कर लेता है, वही जानता है – मनुष्य क्या है ! उसके व्यवहार क्या हैं !’

पर न जाने क्यों सुगन बहू और सुबन्धु को एक साथ देखकर पतितराम को बड़ा डर लगता है । और सुबन्धु हिरनमयी के सामने पड़ने से डरता है । उसके सामने पड़कर सुबन्धु को लगता है, जैसे वह सुबन्धु में सुबन्धु की तलाष करने लगती है । किन्तु अब वह सुबन्धु नहीं तलाषा जा सकता । और उस तलाष में सुबन्धु को भय भी लगता है ।

सुबन्धु ने उससे साफ कहा था, तुम मुझे अब तलाष कर नहीं पाओगी । क्योंकि तुम्हें खोकर मैंने तुम्हें तलाषना पुरु किया था । तुम्हारे रूप, तुम्हारी छवि की जो प्रतिमा मेरे भीतर पड़ गयी थी, मैं तब से उसी को हर स्त्री में तलाषता रहा हूँ । इसी तलाष में मैं कण-कण बिखरा हूँ । तुम उस कण-कण को अब नहीं बटोर सकतीं । मैं भी उसे नहीं बटोर सकता । कोई भी इसे नहीं कर सकता । इस तरह मेरे बिखरने में तुम्हीं हाथ हो । तुम्हीं मूल हो । कारण हो ।”

हिरनमयी हंसी थी तब । बोली, “उस तलाष में तुम्हें कुछ भी तो मिला होगा !”

सुबन्धु ने उत्तर दिया था, “उस तलाष में मैं पग-पग छोटा होता गया – यही मुझे मिला ।”

हिरनमयी बोली, “पर अन्त में तुम्हें सुगन तो मिली ?”

“हां, सुगन मिली । सुगन तुमसे सौगुना बड़ी स्त्री है । पर सुगन हिरनमयी तो नहीं है ।”

“तब बोलो तुम, मैं क्या करूँ !”

“कुछ नहीं !”

सुबन्धु ने एक दिन निर्भय व्यंग्य किया था, “हिरन, तुम अपने-आपको राधा समझकर यहां आयी हो क्या ?”

हिरन के मर्म में आघात लगा था । पर उसे उत्तर तो देना ही था । उसने बड़े धैर्य से कहा, “राधा में विरह था, भावाकुलता थी, प्रणयाकांक्षा थी, मिलन की उत्सुकता थी — मुझमें ऐसा कुछ भी नहीं है । मैं केवल हिरनमयी हूँ ! पर सुबन्धु, तुमने जो मेरी इस रचना में अपने-आपको तोड़ा है — यही, सिर्फ यही, मेरी हार है ! और मैं अपनी इस हार को जरूर एक दिन विजय में बदल दूंगी । तुम देख लेना, सुबन्धु ! मैं इस दुनिया में हारने नहीं आयी हूँ, और तुम्हें सुबन्धु !”

हिरनमयी की आंखों में आंसू बरसने लगे थे । सुबन्धु न चाहकर भी उस अश्रुसिक्त मुख को देखने लगा था । उस मूक रुदन को देखकर सुबन्धु को कितना सुख मिल रहा था ! कितना आराम !

संकेत-वन से नन्दगांव ! पीछे बरसाना का वह राधा-मन्दिर अब भी, यहां इतनी दूर से दिख रहा है । विष्णु पर्वत पर राधा का वह सफेद मन्दिर । हिरनमयी घूम-घूमकर उसी बरसाना की ओर देख रही है । जैसे वह अब तक उसी राधा-मन्दिर में खड़ी है । वह वहीं कहीं छूट गयी है । नींद भरी है उसकी आंखों में शरीर भर में आलस्य तिर रहा है ।

अब नन्दगांव दिख रहा है । लुंजू पटेल राधाबाई को दिखा रहा है, “उधर बरसाना से सखियों सहित राधा आती थीं, इधर नन्दगांव से गोप सखाओं के साथ कृष्ण आते थे — बीच के इसी संकेत-वन में । और यहीं होती थी उनकी लीला !”

पतितराम जैसे चिल्ला पड़ा, “मत कहो लीला, नहीं तो यह दुनिया आज भी माया मानी जाएगी !” सुनो राधाबाई, वह सब लीला नहीं थी, सब सच था ! इतना सच कि वह आज भी घटता है । इसी मन में वह सब आज भी होता है !

“गलत है यह बात !” राधाबाई बोली, “जो कुछ हो चुका है, वह कैसे आज होगा? हूँ ! कहां भगवान की बात, कहां मनुष्य की !”

पतितराम हंस पड़ा । उसके कंधे पर बैठा बच्चा भी हंसने लगा । वह कंधे पर से बोला, “काकू ! मुझे उतार दो ! मैं चलूंगा !”

बच्चा पांव-पांव चलने लगा । उसने बच्चे से पूछा, “यह ‘काकू’ तुम्हें किसने बताया ?”

“मां ने !”

“काकू माने !”

बच्चे ने उत्तर दिया, “काका !”

“और काका माने ?”

बच्चा पतितराम का मुंह देखने लगा । पतितराम भी अपलक निहारने लगा, काकू माने काका ! और काका माने ? पतितराम का शरीर जाने किस आह्लाद से कांप गया ।

वह जैजैवन्ती से बोला, "राहुल ने आज मुझे फिर काकू कहा है ।"

जैजैवन्ती कुछ न बोली ।

फिर बड़ी देर बाद पतितराम ही बोला, "राहुल को मैं पढ़ाऊंगा ।" जितना भी धन लगेगा, मैं उसके लिए जुटाऊंगा ।
राहुल एक दिन बहुत बड़ा मनुष्य होगा ।"

जैजैवन्ती चुप थी ।

पतितराम न जाने क्या-क्या बे-सिर-पैर की बात कहता जा रहा था । जैजैवन्ती

आज वह सब चुपचाप सुनती जा रही थी । बीच-बीच में राहुल कहता, "काकू... काकू... उस बन्दर जैसे आदमी को देखो ! वह कौन-सी चिड़िया है, काकू ? वह क्या गा रहा है, काकू ?... सुनो... सुनो, काकू... !"

राहुल कितनी बार काकू कहता है !

पतितराम तब मन्त्रमुग्ध हो जाता है । उसे लगता है, वह भी कुछ है ! वह कुछ भी एक अर्थ रखता है । पर उस अर्थ को कौन समझेगा ?

"क्यों नहीं ?"

उस अर्थ को केवल पतितराम समझेगा । वह अर्थ सिर्फ उसी पतितराम के लिए है । काकू पतितराम... !

11

नन्दगांव में, जैसे रासलीला समाप्त हुई ; भजन-कीर्तन गाकर जैसे ही यात्री अपनी पहली नींद में सोये, उत्तर दिशा में एकाएक षोर हुआ, बन्दूक दगने की आवाज से सारा कुछ चरि उठा । डाकुओं के गिरोह ने अभागू पर आक्रमण किया था । चिल्लाते और चीखते हुए अभागू को वे उठाकर ले गये । पुलिस और पी० ए० सी० वाले बन्दूकधारी डाकुओं का कुछ न कर पाये ।

डाकूल लोग अभागू को लेकर चम्पत हो गए । पीछे महज छूट गयी अभागू की आर्त पुकार ! उसकी चीख !

सारे यात्री जग गये थे । सबका धैर्य, संकल्प कांपने लगा है । पतितराम हिरनमयी के पास से बोला, "भावना से स्थिति बड़ी है ।"

हिरनमयी उदास हो गयी है । वह जग रही थी, जब उत्तर दिशा से वह पहली आवाज आयी थी । यात्री धीरे-धीरे फिर से सो गये । यात्रा कल सुबह फिर चल पड़ेगी । हिरनमयी को नींद नहीं आ रही है । इस यात्रा में शुरु से अब तक क्या-या नहीं हुआ है । कैसी अनहोनी घटनाएं घटी हैं ! वह इस ब्रज-यात्रा में आयी थी, तन्मयता की अनुभूति जीने । वह इसे जीती चली आयी है । जीते-जीते न जाने कैसे वह एक ऐसे बिन्दु आ पहुंची है, जहां उसे लगा है, कि वह कहीं से साथ-ही-साथ रिक्त भी हुई है । एक ओर सम्पूर्णता, दूसरी ओर रिक्तता । और बरसाने के उस राधा-मन्दिर में तो ऐसा लगा है कि भाव और अनुभूति की सम्पूर्णता पर पहुंचकर उसमें सर्वथा एक नया भाव ही जगा है ।

भाव से बड़ा पदार्थ है ।

जैसे सुबन्धु ने उसके सामने खड़े होकर कहा हो कि जो अपनी ही तन्यमता के क्षणों में जीता है, अपने ही सन्तोष में, वह सम्पूर्ण का अर्थ नहीं पाता ! इसीलिए वह किसी को दे भी नहीं पाता !

हिरनमयी रह गयी थी अपने उसी वृन्दावन-रूपी मन में । और सुबन्धु को, सिर्फ सुबन्धु को जीवन-संग्राम रूपी कुरुक्षेत्र में जाना पड़ा था । अकेले, निहत्थे । मुंह से बहती थी खून की धार और वह आंखों से देखता था वही हत्या, वही उत्पीड़न, निर्मम अत्याचार । कलकत्ता से लेकर नादिया, ढाका, नोआखाली, पटना और मुंगेर तक । उस निर्मम युद्ध की छायावही अकेले माथे पर ढोता रहा । और यह सच है कि मृत्यु, अपराध, उत्पीड़न की हर छाया अन्ततः उसी मनुष्य पर ही मंडराती है ।

सुबन्धु चुपचाप हिरन की आंखों में आ खड़ा होता है, वह कुछ नहीं बोलता । जब हिरन परेषान होकर आंखें बन्द कर लेती है, तो सुबन्धु उसके सामने से भागता है । एक सुबन्धु भागता है, दूसरा सुबन्धु उसका पीछा करने लगता है । सुबन्धु सुबन्धु को पकड़ना चाहता है । हिरन उस दौड़ को, उस खोज को खड़ी देखती रहती है ।

उत्तरपती का यह सुबन्धु, पूर्वपती के उस सुबन्धु की पकड़ में नहीं आता । हिरनमयी तब उसे पकड़ने के लिए दौड़ती है । सुबन्धु हारकर रोने लगता है । हिरनमयी देखती है — पानी के ऊपर तेल बिखर गया है । पानी के ऊपर तेल महज दिख रहा है — तिर रहा है, पर अब उसको कोई पा नहीं सकता । बटोर नहीं सकता ।

सुबन्धु ने कहा था, "मैंने बदला लिया है ।"

हिरनमयी उसके उस पीले मुख को देखकर घबरा गयी । तब सुबन्धु बोला, "पर बदला लेते-लेते मुझे लगा, मनुष्य खुद अपने से ही बदला लेता है । दूसरा और कुछ नहीं है ।"

नन्दगांव से यात्रा करहला, कोकिलावन, कोटवन और कोसी से होती हुई पैगामपुरा जायेगी । विजयादशमी वहीं पड़ेगी ।

हिरनमयी ने सुबन्धु का हाथ पकड़ लिया, बड़े कोमल स्वर में बोली, "सुनो सुनो सुबन्धु सुनो सुबन्धु !"

"क्या है ?"

तब हिरन बोली, "युद्ध की विभीषिका झेली जाती है, प्रलय-संहार सहा जाता है ।"

"पर किसलिए ?" सुबन्धु ने पूछा ।

"दायित्व निर्वहण के लिए, "हिरन ने उत्तर दिया ।

सुबन्धु काफी देर चुप रहने के बाद बोला, "मैं कोई दायित्व नहीं जानता !"

"अपना व्यक्ति तो जानते हो तुम ?"

सुबन्धु ने कोई उत्तर न दिया ।

तब हिरन बोली, "अपने उसी व्यक्तित्व की खोज के लिए युद्ध की विभीषिका झेली जाती है, प्रलय-संहार सहा जाता है ।"

सुबन्धु क्रोध से लाल हो गया, जैसे उसका बेहद अपमान हुआ हो । वह कांपते स्वर में बोला, "मैं आदमी हूँ, कोई जानवर नहीं, जिसे एक खुराक दवा देकर या धर्म-दर्शन की एक बात पिलाकर उसे देवता बना लिया जाये !"

हिरनमयी ने सुबन्धु का यह हाथ न छोड़ा । बोली, "तुम आदमी ही हो, तुम्हें देवता कौन बना रहा है ?"

सुबन्धु बोला, "तुम्हें आदमी से क्या सरोवार ... तुम्हें तो उसी देवता से ही मतलब है ... तुम ... औरत कहां ... तुम तो नवद्वीप की वैष्णवी हो ! विरहिणी और अभिनेत्री ... !"

हिरनमयी ने और कसकर सुबन्धु का हाथ पकड़ लिया । उसके मुंह पर सुबन्धु ने जो तमाचा एक बार मारा था, उस मार की भी ताकत हिरन की उस बंधी मुट्ठी में खिंच रही थी । सुबन्धु प्रकट हो रहा है, हिरन को अच्छा लग रहा है ।

अचानक उसी समय सुबन्धु को सुगन का मुख दिखायी पड़ गया । इससे भी पहले उस मुख को हिरन ने देखा था । सहज ही तत्काल उसकी बंधी मुट्ठी ढीली पड़ गयी । भीड़ को चीरता हुआ जब तक वह सुगन के पास पहुंचे, तब तक न जाने कहां वह गायब हो गयी । किन्तु उसी बीच वह जा टकराया दुर्गन्ध बाबा से । लगे दुर्गन्ध बाबा उसे गालियां देने । पर अजीब बात, वे गालियां सुबन्धु को लग नहीं रही थीं । उस आवाज में एक अजीब-सा आकर्षण था, मोहिनी थी ।

सुबन्धु उनके संग-संग चलने लगा ।

"अबे साले, तू कौन है ? मेरे साथ इस तरह क्यों चल रहा है ?"

सुबन्धु ने हंसकर उत्तर दिया, "मेरा नाम सुबन्धु है ।"

"तेरा मुझसे मतलब ?"

"कुछ नहीं, बाबा !"

"फिर साले, तू मेरे साथ क्यों चल रहा है ?"

सुबन्धु को मजा आ गया । उसने पूछा, "आप क्यों सबके साथ चल रहे हैं ? ऐसा था तो आप इस यात्रा में ही न आते । अकेले आते कभी ।"

"हूं ... यह बात !"

दुर्गन्ध बाबा ने घूरकर सुबन्धु को देखा । वे नजरें मिल गयीं । चारों पांव बढ़ रहे हैं , पर दोनों की नजरें आपस में बंध गयी हैं ।

सुबन्धु चिल्ला पड़ा, "मुचकुन्द !"

दुर्गन्ध बाबा ने अपने मुंह फेर लिया । चुप ... हजार चुप ! हद है, यह किससे भेंट हो गयी ! कुन्द ... कुन्द ! सन् बयालीस का कुन्द !

यकीन आकर भी यकीन नहीं हो रहा है । सर्वांग में बिजली दौड़ रही है । एक अनोखी चेतना ! विद्रोही कुन्द का वह चेहरा नहीं रह गया था । उसी मुख को ढकने के लिए इतनी-इतनी दाढ़ी-मुंछ, इतने केष, ऐसा असहज वस्त्र-विन्यास ... वेष-भूषा ... ऐसा अनोखा स्वभाव ! पर वे आंखें नहीं बदली हैं । उसी में सारी पहचान है कुन्द की । उसका सहपाठी ... उन्नीस सौ बयालीस का वह विष्वविद्यालय का षेर । डॉक्टर बडोला का लेपिटनेंट ।

मुचकुन्द ने भी पहचान लिया, "अरे, तू यहां कैसे ?"

वही प्रश्न उत्तर भी, "तू यहां कैसे ?"

"मेरा नाम दुर्गन्ध है, मुझसे मत पूछ ... तू बता अपनी, तेरा नाम सुबन्धु है ! ... ठीक है न, यही नाम ? बता अपनी ... ?"

सुबन्धु ने बताया, “बस, यूँ ही । घर पर बेकार पड़ा था, बस तफरीह के लिए चला आया !” बड़ी खुशी हुई तुमसे मिलकर !”

“पर मुझे नहीं हुई !”

“क्यों ?”

“क्योंकि मैं तब से खो गया हूँ, मैं नहीं चाहता कोई मुझे इस तरह पहचान ले ! मुझे इससे सख्त नफरत है ।”

सुबन्धु को उसकी बात से चोट लगी । पर क्या कहता वह । पूछा, “कब से यह दुर्गन्ध बाबा बने ?”

“जब से हिन्दुस्तान आजाद हुआ !”

सुबन्धु के सामने वह दृष्ट खिंच उठा : षहर के एक थाने के आंगन में आनन्द और लंगड़ा संन्यासी हथकड़ी और बेड़ियों में कसे खड़े हैं । थानेदार और सिपाहियों के बेंत उन पर पड़ रहे हैं । वे दोनों निर्विकार भाव से वह सारी चोट सह रहे हैं । सुबन्धु तब अपनी छत से चिल्ला उठा था । दोनों क्रान्तिकारियों की आंखें सहसा तब सुबन्धु की ओर उठी थीं । वे अग्निमुख आंखें ! मुचकुन्द तब उसी छत पर से पत्थर के टुकड़े में चिट्ठी बांधकर उस थाने के आंगन में फेंकता था । फिर उन्हीं पत्थरों के सहारे आनन्द और संन्यासी भी उन्हीं खतों के पीछे सादी जगह पर अपने जवाब लिखकर सुबन्धु की छत पर फेंकते थे ।

आज वह सब स्वप्न की तरह सुबन्धु को लग रहा है । कहां गये वे आजादी के दीवाने ! वह अब तक सोचता था, वह हंसमुख बहादुर मुचकुन्द कहां गया होगा ! आज वही मिला दुर्गन्ध बाबा के रूप में !

आश्चर्य होता है — यही है वह मुचकुन्द, जिसने तब थाने में आग लगायी थी । स्टेशन पर जाकर रेल की पटरी के नीचे ‘डाइनामाइट’ लगाया था । और यही दो वर्षों बाद षहर चौक में चारों ओर से पुलिस द्वारा घिर गया था । तब वही कुन्द बिजली की तरह छत पर चढ़ गया था । चारों ओर पुलिस, छतों पर भी पुलिस । वह छतोंछत से भागता हुआ, कूदता-फांदता करीब मील भर पार गया था । चारों ओर से पुलिस फायर कर रही थी । घाट पर महाराजा की कोठी की छत से तब वह गंगा में कूदा था, “जै भारत माता की !”

आश्चर्य है, वह कुन्द मरा नहीं । आज दुर्गन्ध बाबा के रूप में उसके सामने है — वही मुचकुन्द ! सुबन्धु को विश्वास नहीं हो रहा है । उसने बढ़कर कुन्द को बांह से पकड़ लिया । एक अद्भुत सुगन्ध आ रही है, दुर्गन्ध बाबा के अंग से !

दुर्गन्ध बाबा ने सुबन्धु को अपने से दूर हटा दिया, “हटो, मुझसे दूर रहो ! तुझे आश्चर्य है, मैं कैसे जीवित हूँ ?”

“हां, आश्चर्य ही नहीं, महाआश्चर्य है ।”

वह बोला, “मुझे भी आश्चर्य है कि तु कैसे जीवित हो !”

“क्यों ? तुम्हें मेरे बारे में कैसे पता ?”

“पता है ! देखा है मैंने तुझे ! हावड़ा स्टेशन पर मुंह से खून उगलते हुए । षरीर तुम्हारा बुखार से टूट रहा था । तुम अपनी वह छोटी-सी अटैची नहीं उठा पा रहे थे । मैंने ही तुम्हारी वह अटैची उठायी थी, और पटना वाली गाड़ी पर तुम्हें बिठाया था ।”

सुबन्धु आश्चर्य में डूबता जा रहा था । वह एकटक मुचकुन्द के इस नये रूप को निहार रहा था । मुचकुन्द सब कुछ साफ-साफ बता रहा है, “मैं तब हत्यारा हो गया था ।”

मुचकुन्द हंसा । दुर्गन्ध बाबा की हंसी फूटी । हंसी खत्म करके वह बोला, “हर हत्या पहले अपनी होती है, तब दूसरे की !”

सुबन्धु का सिर झुक गया था । उसे लग रहा था, एक लाष उसके गले में झूल रही है और उसकी दुर्गन्ध उसकी नसों में घुसती जा रही है ।

मुचकुन्द बोला, “घबराओ नहीं, मैं हूँ दुर्गन्ध बाबा ।”

सुबन्धु चुप था । मुचकुन्द ने तब उसके कन्धे पर सहसा अपना हाथ रख दिया । सुबन्धु लड़खड़ा गया । उसे लगा, उसके भीतर से खून की धार फूट निकलेगी । उसने सोचा, उसे दुर्गन्ध बाबा से दूर रहना होगा । उसके तन-बदन से सच, इतनी दुर्गन्ध निकल रही है ! नहीं, यह दुर्गन्ध सुबन्धु के ही तन-बदन से निकल रही है ।

मुचकुन्द हंसकर कहता है, “हर उत्साह के पीछे एक बड़ा दर्षन चाहिए, नहीं तो वह वीरता के नाम पर दुर्गन्ध बिखेरने लगता है । एक दर्षन वह हमारी पूर्वषती तक था, पर हमारी उत्तरषती के आसपास क्या हुआ ? वही गांधी की हत्या न । अरविन्द हुए योगी । सुभाष खो गये अन्तरिक्ष में । नेहरू इतिहास की खोज में डूब गये, उत्साह सारा दिषाम्रष्ट हो गया ।”

यह सब कहते-कहते मुचकुन्द बेहद गम्भीर हो गया । ठंडे लोहे की तरह उसकी जुबान आवाज करने लगी, “सत्य पदार्थ है — लोग इसका मजाक बनाने लगे । जो इसके विष्वासी भी थे — वे आपस में ही लड़ने लगे । हुआ वही ‘जनिपिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाषनम्’ ... मूसलरूपी पदार्थ से यदुवंपियों का क्षय !”

सुबन्धु दोनों हाथों से अपना सिर थामे हुए चल रहा था । उसकी आंखें बन्द थीं । कुछ देर बाद जब उसने अपनी आंखें खोलीं — दुर्गन्ध बाबा वहां से अदृष्य था । सुबन्धु उसे चारों ओर ढूँढने लगा । पर वह उस महाभीड़ में न जाने कहां इस तरह अदृष्य था । वह पागल की तरह उस भीड़ को चीरने लगा । कहां गया मुचकुन्द ?

कहां क्या दुर्गन्ध बाबा ... लापता !

सुबन्धु को रुलाई छूटने लगी । कहां गया वह दुर्गन्ध बाबा ? वह यहां क्यों आया था ? क्या वह मेरा पीछा तो नहीं कर रहा है ?

सुबन्धु अपने पीछे देखने लगा । कहीं नहीं है वह : दाएं, बाएं और आगे — कहीं नहीं है वह ! तो वह यहां क्यों आया था ! वह इस तरह मुझे आर-पार बेधकर क्यों चला गया ? इससे तो फायदा कुछ नहीं हुआ । महज वह उदासी, वह अर्थहीनता और दुहरी हो गयी । यह इस तरह से क्यों घूम रहा है ? कहां-कहां घूम रहा है ? वह कोई षक्ति ग्रहण कर रहा है क्या ? वह उस भयानक युद्ध का फल देख रहा है क्या ? चारों ओर के फल, विभिन्न पार्टियां, मन्त्रिमण्डल, पार्लियामेन्ट, जीवन, समाज और यह पूरा राष्ट्र, इसके स्वप्न, पर इसकी योजनायें, इसका उद्देश्य, पर मनुष्य का क्षत-विक्षत चरित्र ... इसका रोगग्रसित मन-प्राण ... उसने पदार्थ का अर्थ पा लिया क्या ? या वह उसी का अर्थ चारों ओर ढूँढ रहा है ?

सुबन्धु रूआंसा हो गया । तभी उसके कान में मां की कही हुई एक बात गीत के सुर-सी तैरने लगी । सुबन्धु जड़-सा उसे सुनता रहा, ‘हे अग्नि, हे अमृत, हे वनस्पति, हे प्राण, हे पाप, हे पुण्य, पार्थिव, अपार्थिव जो कुछ भी है अपना, सबकी मैंने आग में आहुति दे दी । अब इसके बाद से मुझे नया जन्म दो, ताकि मैं वास्तव में जी सकूँ , कुछ श्रेयस्कर कर सकूँ !”

“ पर कैसे ?”

“ क्यों !”

सुबन्धु अपने भीतर—ही—भीतर जैसे चीख उठा । दिवंगत मां की वह वाणी थरथरा कर टूट गयी । फिर उसी अन्तर्म में सुबन्धु की आतैवाणी गूंजी, “मैं कामना, वासना के वेग में जो इस तरह बिखरा हूँ... जो अभाव का भाव मुझे बंधे हुए है, जो प्रतिषोध है मुझमें... जो अविश्वास है मेरा...”

सुबन्धु के कन्धे पर सहसा किसी ने हाथ रख दिया । उसने घबराकर देखा — वह सुगन है । सुगन के उस स्पर्श में कितनी षीतलता है ! उसने स्नेह से पूछा, “क्या बात है ? क्यों इतना परेषान हो ?”

सुबन्धु को सच बोलना पड़ा — दुर्गन्ध बाबा से वह भेंट । दुर्गन्ध बाबा उसका सहपाठी कुन्द था, जो उसे तार—तार करके अभी—अभी न जाने कहां अदृश्य हो गया ।

सुगन ने देखा, सुबन्धु बड़ा असहाय लग रहा है । यह स्थिति सुगन के लिए सदा असह्य रही है । क्योंकि उसकी असहाय स्थिति तब सुगन को भी असहाय बना देती है । मानो कहीं कोई न हो । सुगन ने पूछा, “उस दुर्गन्ध ने तुमसे क्या कहा है ?”

“अपने को जानो ।”

सुगन ने फिर पूछा, “क्या तुम अपने को नहीं जानते ?”

“जानता था पर उसने मझे और बता दिया — तुम यह हो !”

“यह तो ठीक ही हुआ ।”

“ठीक तो हुआ, सुनने—सुनाने में तो सब ठीक ही लगता है, पर अपने को पूर्णतः नंगा देखने में कितनी घृणा होती है... इसे कौन जानेगा ?”

सुगन चुप हो गयी । जैसे उसने सुबन्धु के मर्म का पा लिया । दोपहर हो चली है । धूप तेज है । सुगन के माथे पर पसीना चू रहा है : उसने भीगे हुए कर से सुबन्धु की बाहं पकड़ी, “सुनो, तुम मुझे प्यार करते हो न !”

“हां, करता हूँ ।”

“फिर अपने—आपको अकेला, निःसहाय, नंगा क्यों समझते हो !”

सुबन्धु ने सुगन के कन्धे पर अपना माथा रख दिया । रूंधे कंठ से बोला, “मेरी इस समझ को तुम मिटा दो सुगन ! मैं जन्म—जन्मान्तर तक तुम्हारा ऋणी रहूंगा । ऐसा करो कि मेरी आज तक की सारी समझ, सारी चेतना धुल जाय, फिर मेरे मन, मन और चेतना के कोरे पृष्ठ पर कुछ नया, नूतन अवतरित हो । कुछ विष्वसनीय... कुछ श्रेयस्कर।”

सुगन के शरीर भर में जैसे पुष्प खिल उठे हों । रज—पराग की सुगन्ध उसे चारों ओर से जैसे बांधने लगी हो ! उसने सुबन्धु का हाथ पूरे कसाव से पकड़ लिया, “बोलो तुम क्या चाहते हो, सुबन्धु ?”

“मैं तुम्हें सम्पूर्ण रूप से चाहता हूँ, जिसमें कहीं कोई षर्त न हो, कोई विकल्प और अन्य भाव न हो ।”

सुगन ने सच कुमारसम्भव की पार्वती की तरह सुबन्धु को देखा । उसके होठों पर ललाई बरस गयी । अनुराग से खिंची हुई आंखों में न जाने कैसा रस बरसने लगा । सुबन्धु ने देखा, सुमन का सारा तन, सारा यौवन फले हुए नये

कदम्ब के समान पुलकित हो रहा है । और सुगन लजीली आंखों में अपना अत्यन्त सुन्दर मुख कुछ तिरछा करके सहसा खड़ी हो गई है ।

सुबन्धु आंख बन्द किये हुए बोला, “कोई षर्त नहीं, विकल्प और अन्य भाव नहीं !”

सुगन का सारा मुख लाल हो आया, “ठीक है ... बिलकुल ठीक ...”

सुबन्धु ने आंख खोली । सुगन का वह रक्ताभ मुख देखकर वह घबरा गया । सुगन के सारे मुख पर अब मुसकान खिल रही थी । उसके हाथ की पकड़ में अब कोमलता आ गयी थी ।

सुबन्धु ने भयभीत होकर पूछा, “इस यात्रा में पर यह नियम—व्रत भंग ... ?” सुगन ने झट अपने होंठों पर उंगली रखकर सुबन्धु को रोक दिया, “बस ... कोई षर्त नहीं, कोई विकल्प नहीं ... कोई अन्य भाव नहीं !”

सुगन ने इन तीनों चरणों को इस तरह दुहराया, जैसे वह कोई महागीत गा रही हो ।

सुबन्धु से नहीं रहा जा रहा था, उसने फिर पूछा, “पर यह उचित है क्या ?”

सुगन ने इस बार माथा उठाकर उत्तर दिया, “जहां प्रेम है, वहां कोई पाप नहीं, कोई नियम—व्रत नहीं ।”

सुबन्धु आश्चर्य में डूब गया । उसने कभी न सोचा था कि सुगन यह है — इतनी बड़ी, इतनी स्पष्ट ! उसने अब तक केवल हिरनमयी को ही सोचा था । उसी की छाया वह सब में देख रहा था । और यही उसकी प्रतिहिंसा भी थी । आज सुगन के माध्यम से वह हिरनमयी को जैसे पहली बार समझने का कोई सूत्र पा रहा है ।

सुबन्धु के पांव यात्रा में कांप रहे हैं । पांव ही क्यों, सारा शरीर । क्यों यह कम्पन है — बताना कठिन है । सुगन को प्यास लग आयी है । वह पानी के लिए पतितराम को पुकारती है । थर्मस का पानी उसी की बहंगी में है । सुबन्धु सहज ही पतितराम के पास जाकर थर्मस ले आता है । पानी उंडेल कर देता है सुगन को । वह एक ही सांस में सब जल पी लेती है ।

सुबन्धु को बरबस याद आता है, उसने आज पहली बार सुगन को इस तरह पानी पिलाया । उसे बहुत अच्छा लगा है यह कार्य ।

सुगन बोली, “सुबन्धु, तुम अब मुझ पर एक कहानी लिखना ।”

सुबन्धु ने उत्तर दिया, “नहीं, तुम लिखना मुझ पर । पाया तो तुमने मुझे है । मैं तो अब तक पानी के ऊपर बिखरे हुए तेल की बूंद की तरह था । तुम्हीं लिखना अब !”

उसी बीच पूरब दिशा में आंधी आयी । सारी यात्रा जल्दी—जल्दी बाग—बगीचों को पार कर एक बड़े मैदान में आ खड़ी हुई । सुगन सुबन्धु के सहारे खड़ी थी । आंधी में कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा था । चारों ओर यहां ब्रज की धूल धरती से आसमान तक भर गई थी । सुगन अपना मुंह सुबन्धु के अंक में गड़ाये खड़ी थी ।

सुबन्धु को याद आ रहा था — इसी तरह उस कॉलेज—मैदान में सुबन्धु अपना वह मुंह हिरनमयी के अंक में छिपाये खड़ा था ।

आंधी करीब सवा घंटे तक चली । आधे से ज्यादा यात्री जमीन पर बैठ गए थे । सुगन और सुबन्धु भी बैठ गये थे । आंधी का वेग जब कम हो चला, तब पतितराम पास आकर बोला, “बहू जी, आपको मालिक बुला रहे हैं ।”

सुगन उठकर जाने लगी, तो सुबन्धु को लगा, जैसे आंधी खत्म हो गयी । हवा थमने जा रही है ।

यात्रा फिर चलने लगी । वही जै-जैकार, वही कीर्तन, भजन !

लाउडस्पीकर पर कोई बोल रहा है, "प्रभू ! हमारे उद्देश्य की सिद्धि में सहायक बनें ।"

पतितराम अपने साथ के यात्री से पूछता है, "पर यह तो बताया नहीं, क्या उद्देश्य है इस यात्रा का !"

यात्री उत्तर देता है, "भक्ति की महिमा-यात्रा है यह । यह एक भाव है । इस भाव में जो जैसा पात्र होगा, वह अपना अर्थ ढूँढ लेगा । यह अर्थ ढूँढना ही अपना, अपना उद्देश्य है । इसे कोई अन्य किसी को नहीं बता सकता ।"

पतितराम ने षुभ्राषुं बाबू से सुना था कि परिस्थिति बदलने से भाव बदल जाता है । लेकिन सुगन बहू बताती है कि, नहीं, भाव बदलने से परिस्थिति बदल जाती है । इन दोनों में सच कौन है ? क्या है वह ?

पतितराम अब अनुभव करता है : इसका उत्तर मनुष्य को स्वयं ढूँढना होगा । पर इस दुनिया में नब्बे फीसदी ऐसे लोग हैं, जो अब तक कुछ नहीं सोच पाते - अर्थ ढूँढने की बात तो दरकिनार । वे बेचारे सोचना उस समय शुरू करते हैं, जब उनके वष से सब कुछ बाहर हो जाता है ।

रमोली इसी तरह है । वह गोसाईं इसी यात्रा में चलते-चलते सहसा मर गया । रह गयी अकेली रोती हुई रमोली । अब वह हाय-हाय करती है, कि अब क्या करूँ मैं । अब कहां जाऊँ ? यद्यपि अजीब बात यह है कि वह गोसाईं रमोली का कुछ भी न था । महज वह एक उपजीवी था रमोली पर । रमोली तब तक कुछ नहीं सोचती थी । अब से सोचना शुरू किया है उसने कि अब वह क्या करे ?

पतितराम के पीछे-पीछे वही रमोली छाया की तरह चलती है । वह उसे पतितराम नहीं कहती । कहती है उसे राम बाबू । वह पहली औरत है, जिसने अब तक पतितराम से उसकी जाति नहीं पूछी है । और जो यह जैजैवन्ती है, वह अकसर कहती है, "पतितराम, तुम्हारा स्वभाव और विचार तो बहुत अच्छा है, पर तुम्हारी जात ।"

"बताओ भला, मैं अपनी जात लिए क्या करूँ । विधाता ने मुझसे पूछकर तो उस जात में मुझे भेजा नहीं, तब बताओ मेरी क्या गलती ?"

जैजैवन्ती गम्भीरता से उसे देखने लगती है । पतितराम कहता जाता है, "मनुष्य को अकारण उस बात के लिए दण्ड देना, जिसके लिए वह जन्मजात विषय है - यह कैसा न्याय है भला ?"

राहुल उसी समय पुकारता है, "काकू ! ओकाकू ! अभी हमें कितनी दूर जाना है, काकू ?"

पतितराम का सारा शरीर नन्हे-से पौधे की तरह कांप जाता है । उसे सहज ही ऐसा लगता है कि उसके विरवे पर कोई कोयल आकर बैठ गयी है, और वह बोलती है, "काकू । काकू !"

रमोली ने सिर्फ एक दिन इतना ही पूछा था, "राम बाबू ! तुम्हारा घर कहां है ? कौन-सा देश ?"

पतितराम ने बताया था, "मेरा देश पूरब है । वहां बहुत गीत हैं - जीने से लेकर मरने तक हर छन पर गीत !"

"यहां से पूरब दिशा कौन है, राम बाबू ?"

पतितराम ने हाथ उठाकर बताया था । वह उठा हुआ हाथ तब कांपने लगा था - देश तो पूरब है, पर तुम्हारा घर कहां है, पतितराम ?

"हां, घर कहां है ?"

पतितराम सोचने लगा था । सोचते-सोचते उसे उसका गांव याद आया था – पचकुइयां, जिला फैजाबाद । छप्पर का गांव – जै दरिद्रनारायण की । तीन भाइयों में सबसे छोटा । यही एक उस गांव के कुम्हार टोला में पढ़ने वाला बालक । नाष हो उस गुरु महाराज का – किस छन में उन्होंने कहा था कि यह संसार माया है । तभी घर छोड़कर भागा था पतितराम – नहीं-नहीं, तब पतितराम नाम कहा था ? तब तो नाम था मोतीलाल । सातवीं जमात में पढ़ता था मोती तब !

पता नहीं क्या हुआ होगा उस घर का । उस घर का फिर मुंह देखना बदा भी होगा या नहीं । अयोध्या में एक नास्तिक साधू आया था । पतितराम उस साधू की वह बात नहीं भूल पाता, “बचवा, सुनो, साधू-वैरागी होना कौन बड़ी बात है ! जो ही इस संसार से हारकर भाग निकले, वही साधू-वैरागी । पर असली बात तो है यह – जो इस झूठ को त्यागकर एक दिन सच में फिर वापस लौट जाय । यह सबसे कठिन है, बचवा ! मृत्यु से भी कठिन ।”

यही सबसे कठिन काम पतितराम ने किया है । उसने इस सत्य को किसी से नहीं बताया है । इसे सुनने के लिए अभी दुनिया में हिम्मत नहीं है ।

12

पैगामपुरा में विजयादशमी मनायी गयी थी । राम और रावण की लीला । रावण का बहुत बड़ा रूप बनाकर एक ओर स्थापित किया गया था, दूसरी ओर राम, जानकी और हनुमान । दो विषाल सेनाएं – राम और रावण की । राम की विजय हुई थी । रावण की विषाल मूर्ति में आग लगा दी गयी थी । यह सब संध्या समय हुआ था । रात को फिर रासलीला के स्थान पर हुई थी रामलीला । वही कृष्ण बनने वाला बालक राम बना था, राधा थीं सीता । मनसुखा बना था, लक्ष्मण ।

उधर हो रही थी जमकर खूब रामलीला, इधर बम्बई के एक यात्री के षिविर में चोरी हुई थी । यात्री रामानुज गोखले थका-हारा सो रहा था, उसकी पत्नी रासलीला देख रही थी । तकिये के नीचे पर्स डाल रखा था । चोर आया, तकिये के नीचे से पर्स लेकर भाग गया । गोखले ‘चोर-चोर’ कहकर चिल्लाने लगा । षिविर के बाहर तक दौड़ा आया, पर चोर लापता ।

क्या करे पुलिस पी0 ए0 सी0, क्या करेंगे गोसाईं महाराज ! “चोर अपने ही भीतर से, तब उसे कौन पकड़ सकता है !” लुंजू पटेल राधाबाई से कह रहा है ।

पैगामपुर से यात्रा षेरगढ़ जा रही है । षेरगढ़ से फिर चीरघाट । चीरघाट से बच्छवन, फिर वृन्दावन । वृन्दावन अभी बहुत दूर है । आज से ठीक चौथे दिन यात्रा वृन्दावन पहुंचेगी ।

एक मोड़ पर अचानक यात्रा में हिरन की सुबन्धु से भेंट हो गयी । वह अकेला ही था । सुगन, उसका पति और पतितराम पता नहीं उस महाभीड़ में किधर खोये थे । हिरन ने ही बात-चीत ष्शुरु की । बातों-बात में वह बोली, “सुबन्धु,

तुम याद करो, जब मैं बहुत व्याकुल थी, तब कभी तुमने मुझसे कहा था कि जो नहीं प्राप्त है, जो नहीं प्राप्त हो सकता, उसे तो सभी प्यार करते हैं, और घड़ों आंसू बहाते रहते हैं । इनमें कौन-सी बड़ी बात है ? ' ' ' याद करो ' ' ' कहा था न तुमने ? ' ' ' "

"हां, कहा तो था ।"

हिरनमयी आगे बोलती है, "और उसके बाद तुमने यह कहा था कि जो प्राप्त है, मिल चुका है, सामने है जो, उसे कोई उसी तरह प्यार करे तो जानूं !"

"ठीक, यह भी कहा था ' ' ' और यह आत तक सही है ।"

हिरनमयी सुबन्धु के सामने माथा झुकाये हंस पड़ी । भक्ति स्वर में फिर बोली, "विश्वास करो सुबन्धु, तुम्हारे ही उस बल से, स्नेह और आशीष से मैं इससे भी आगे गयी हूं । और मैं इसके लिए बहुत-बहुत कृतज्ञ हूं ।"

सुबन्धु कुछ न बोला । जैसे उसमें कोई जिज्ञासा ही न पैदा हुई । दोनों चुपचाप चल रहे थे ।

इसी तरह चुपचाप दोनों तब गंगा पार करके कहीं जा रहे थे । आज हिरनमयी ने अचानक उसी यात्रा की याद दिलायी, "तुम्हें वह यात्रा याद है न ?"

"और किस को याद रहेगा ? तुम मेरा मजाक करना चाहती हो क्या ?"

सुबन्धु का मुख आरक्त हो गया । हिरन उसे सहज करने के लिए इधर-उधर की तमाम बात करने लगी । सुबन्धु सब चुपचाप सुनता रहा ।

सहसा सुबन्धु बोला, "तुम जो आगे बढ़ गयी हो, उसे तो बताओ !" हिरन प्रसन्न हो गयी । वह जैसे अभिव्यक्ति के लिए उचित शब्द ढूंढने लगी । उसके होंठ कांपे । उसने सुबन्धु का हाथ पकड़कर कहा, "जो स्वयं से भी प्राप्त नहीं है, जो महज दूसरों द्वारा दे दिया गया है - उससे प्यार करना कितनी बड़ी बात है ।"

काफी देर बाद वह बोला, "यह समन्वय है ' ' ' जो चतुर है, सफल है, उन्हीं का काम है यह !"

"तुम क्या सफल होना नहीं चाहते ?" हिरन ने पूछा ।

"अब सफलता कैसी ?"

"जो अभी शेष है, उसी के लिए !"

सुबन्धु कटु हो गया, बोला, "यह सब कहने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं । न तुम्हारी कोई बात मुझे छूती है ।"

"ऐसा क्यों है, सुबन्धु ? मुझे यह बता दो, मैं जन्मभर तुम्हारा एहसान मानूंगी !"

"नहीं, पर अब क्या होगा वह सब बताकर ?"

"अगर कुछ होने को था, तो फिर क्यों हमारी भेंट इस तरह हुई ? लगता है, कुछ जरूर होने को है ' ' ' बताओ ' ' ' बोलो सुबन्धु !"

सुबन्धु चुप है । हिरन उससे आज उत्तर लेकर रहेगी - ऐसा लगता है उसके आग्रह से ।

सुबन्धु ने जिसको आज तक भोगा है, उसे कैसे बताए । उसके होंठ कांपते हैं, पर शब्द नहीं फूटता ।

तब हिरनमयी ही बोलती है, "मैं किसी भी मूल्य पर तुम्हें इस तरह टूटने और बिखरने न दूंगी । मेरी रचना में तुम्हारा बहुत बड़ा हाथ है, सुबन्धु । इसलिए आज मुझे लगा, तुम भी कहीं मेरी रचना हो । तुम्हारे हर टूटन और बिखरन में मैं भी टूट रही हूँ, मैं भी बिखर रही हूँ । मैं ऐसा नहीं होने दूंगी ।"

सुबन्धु चुप है । पर वह सिर से पैर तक कांप रहा है । उसे ऐसा लगता है, जैसे हिरनमयी सर्वथा बिलकुल नये करों से उसे छू रही है । भीतर से सारा व्यक्तित्व वह आज पकड़ लेना चाहती है ।

हिरनमयी कहती है, "तुमने अभी पिछले ही दिन यह कहा था न, कि जो अपनी ही तन्मयता के क्षणों में रहता है, जो अपने ही सन्तोष में रहता है, वह अर्थ नहीं दे सकता । विष्वास करो, मैं दूंगी तुम्हें अर्थ ! क्योंकि मैंने अर्थ पाया है तुमसे ? ... यह हो सकता है कि मेरा अर्थ छोटा हो ... ! ... पर दूंगी मैं ... "

यह कहकर हिरनमयी ने सुबन्धु की आंखों में देखा । सुबन्धु की आंखें बिलकुल सूनी थीं, उनमें कोई भाव नहीं था । उनमें सच, जैसे अभाव ही अभाव था और उसके सारे चेहरे पर उसी अभाव की कसक थी, अवसाद था ।

"विष्वास करो सुबन्धु, अब ऐसा कुछ नहीं रहेगा । मैं तुम्हारे संषय को मिटा दूंगी, क्योंकि मुझमें कोई संषय नहीं है ।"

ऐसा लग रहा है, हिरनमयी बोल नहीं रही है, खिलखिलाकर हंस रही है । और वह हंसी भी ऐसी, जो एक बार शुरू होकर खत्म नहीं होना चाहती ।

सुबन्धु के पांव हिरनमयी का साथ नहीं दे पा रहे थे । वह विवश होकर भीड़ में पिछड़ने लगा । हिरन ने उसे पकड़कर खींचते हुए कहा, "चलो, चलो, मेरे साथ-साथ । अब तुम मुझसे भाग नहीं सकते । तुमने सोचा है, मैं तुमसे जान छुड़ाकर भागी थी न !"

और सुबन्धु संग-संग चलने लगा ।

आज की यात्रा समाप्त होने को है । दिन ढले काफी देर हो चुकी है । तभी एकाएक पीछे घोर उठता है । अभागू डाकुओं के गिरोह से फिर भागा चला आ रहा है ।

पुलिस कप्तान ने सिपाहियों से उसे घिरवा लिया । वह हाथ जोड़े कहता है, "मेरा कोई कसूर नहीं माई-बाप ! वे जैसे मुझे लेकर भागे थे, मुझे इतने ही दिनों बाद उन लोगों ने छोड़ दिया ।"

"क्यों छोड़ा ?" साहब ने पूछा ।

"फिर तुझे उन लोगों ने जिन्दा कैसे छोड़ दिया ?"

"मारा है सरकार ! यह देखिए उनकी मार !"

अभागू ने बड़े कष्ट से अपना कपड़ा उठाकर दिखाया, सारे बदन पर मार के भयानक दाग थे ।

"अब तुझे उस गिरोह का सब पता बताना होगा ।"

अभागू साफ बोला, "मुझसे यह नहीं होगा, साहब ।"

"फिर तुझे उन लोगों ने मारा क्यों है ?"

"इसीलिए कि वे मुझे यहां लौटने नहीं देना चाहते थे । उनका कहना था कि इस बार मैं उनके अते-पते बता दूंगा

।"

“फिर तू क्यों नहीं बताता ?”

“यह मेरा काम नहीं है सरकार ! मुझे कृष्ण भगवान ने फिर इस जिंदगी में वापस बुला लिया है । अब मुझसे ऐसा-वैसा काम नहीं होगा ।”

अभागू पुलिस कप्तान के पैरों पर गिर पड़ा और फूटकर रो पड़ा, “दोहाई सरकार की, मेरे कोई नहीं है इस दुनिया में । इतने यात्रियों के बीच में रहूंगा ” इनके साथ-साथ चलकर मुझे विश्वास हो जाएगा कि मैं भी आदमी हूँ सरकार !”

अजब केस है यह ! पुलिस हैरान है, वह क्या करे अभागू का ! अभागू यात्रा में शामिल हो गया है । यात्रा आज के पड़ाव पर पहुंचने को है । षेरगढ़ से चीरघाट ।

सुबन्धु यात्रा में खो गया है । इतनी बड़ी यात्रा न जाने कब से यह चल रही है, कब तक चलती रहेगी । पर अब यह यात्रा जिस बिन्दु पर पहुंची है, वह अपूर्व है । कल के दिन में और आज के दिन में बहुत अन्तर है । यात्रा में घोर कम हो गया है । गाने वाल लोगों की आवाज में अब थकन आ गयी है ।

इसी यात्रा में कभी महात्मा बुद्ध आये थे आम्रपाली के साथ । इसी में वह यूनानी महासुन्दरी क्लिंसांवोरा भागकर आयी थी । सुना है, एक फ्रांसीसी यात्री भी आगे आया था, अपनी इतालवी प्रेमिका गार्वा के संग । फिर आये यहां बिषप हैव्वर, विक्टर जैकेमाउंट और ग्राउन, पश्चिम से निराष यहां आध्यात्मिक शान्ति खोजने ।

आज यहां आए हैं उत्तरपती के लोग । चोर, डाकू , नास्तिक, हारेथके, उदास लोग । और भावनामयी, निष्ठामयी हिरन, प्रेममयी सुगन, कुछ नहीं से शुरू कर इतनी दूर बढ़कर आ पहुंचा है वह पतितराम । कोई यहां इतिहास ढूंढने आया है, तो कोई अपने अभाव का अर्थ ।

इस यात्रा में सुबन्धु को ले आने के लिए जिम्मेदार है, वही सुगन । जैसे वह सुबन्धु के साथ बिना इस यात्रा में नहीं आ सकती थी । सुबन्धु तब उसके घर में बिलकुल पीछे वाले कमरे में गिलास थामे बैठा था । सामने सिगरेट जल रही थी । सुगन ने कहा था, “चलो मेरे संग, मैं तुम्हारे भले के लिए कह रही हूँ ।”

सुबन्धु ने उत्तर दिया था, “मेरा भला सोचने वाली तुम कौन हो ?”

“तुम नषे में जो कुछ बकोगे, मैं उसकी परवाह नहीं करूंगी । उठो, तुम्हें मेरे संग चलना ही होगा ।”

“आखिर क्यों ?”

“वह यात्रा ब्रज की है, भावना और विश्वास की यात्रा । चलो, तुम्हें वहां अपना खोया हुआ विश्वास मिलेगा ।”

“नहीं, मैं नहीं जाऊंगा ।”

“आखिर क्यों ?”

“तुम इतनी भोली हो ? इतने बड़े आदमी की स्त्री मेरे संग उस यात्रा में चले ! और मैं ? मैं जो कोई नहीं हूँ किसी का जो कुछ नहीं हूँ यहां तक कि अपना भी नहीं । जो मेरे साथ चलेगा, उसे नुकसान उठाना पड़ेगा — मैं झूठ नहीं बोलता !”

“तो नुकसान मेरा होगा न !”

“मेरा नहीं, हमारा !”

सुगन ने हंसकर सुबन्धु के कन्धे पर हाथ रख दिया था । उसके हाथ का गिलास कांपकर फर्ष पर गिर पड़ा था । षीषा टूटकर बिखर गया था । पूरे कमरे में षराब की गन्ध भर गयी थी ।

आज वही यात्रा चलते-चलते यहां तक आ पहुंची है । लगता है, जितनी बड़ी यात्रा अब तक समाप्त हुई है, उससे कहीं अधिक कठिन यात्रा अभी आगे है ... अन्त में है ।

पतितराम ने सुबन्धु से कहा, “अब भी तुममें कोई फरक नहीं आया, बाबू ? लगता है, बड़े भारी अंहकारी हो तुम ! तुम सोचते हो, सारी दुनिया तुम्हारे लिए मर जाय और तुम जिन्दा रहो । तुम किसी की कीमत नहीं जानते । मैं मानता हूं, तुमने कभी किसी को कुछ दिया होगा, और अब तुम्हें तुम्हारी समझ के मुताबिक नहीं मिला, तो सर्प की तरह तब से तुम्हारा अंहकार फनक रहा है ।”

सुगन चिल्ला उठी, “पतितराम !” पतितराम दोनों हाथ जोड़कर बोला, “बहू मां, मुझे आज तुम गोली से उड़ा दो, मुला आज मुझे पूरी बात कह लेने दो !”

सुगन ने सुबन्धु की ओर देखा — सुबन्धु चुप था । पतितराम के कन्धे पर बहंगी नाच उठी थी ।

वह आगे बोला, “उसी अंहकार ने तुम्हारे भीतर आग लगा रखी है । उसी में तुम्हारा सब कुछ भस्म हो रहा है । और तुम दोष लगाते फिरते हो दूसरे पर ... ! एक ही बार दिया है न तभी इतना अंहकार है ... अरे भइया, पूरी जिन्दगी महज देना पड़ता है — यही है प्राप्ति !”

सुबन्धु एकटक पतितराम का मुंह देखता रहा । पतितराम के होंठ फड़क रहे थे । उसके मुंह में आज षब्द नहीं अंट रहे थे, “हां-हां, तुम्हारे अंहकार में बीमारी घुस गयी है । तुममें है क्या, जो दुनिया तुम्हें ... ”

सुगन ने एकाएक पतितराम के मुंह पर तमाचा जड़ दिया, “चुप रह !”

पतितराम को जरा भी चोट न लगी । उसने बड़े कोमल स्वर में कहा, “बहू मां ! तुम कैसी हो ! लगता है, तुम पागल हो गयी हो ।”

“यह सब आज तू क्या बक रहा है, पतितराम ?” सुगन ने कहा । पतितराम बोला, “मां, मैं भी इसी तरह अंहकारी था, मैं सब जानता हूं, मैंने जो कुछ भी कहा है, वह अपने लिए भी कहा है । ... विष्वास करो, बहू मां, इस दुनिया में अगर तुम मुझे न मिली होतीं, तो मैं जरूर कहीं आत्महत्या कर लेता और मरकर वहीं तिलचट्टा कीड़ा होता ... अंधेरे में रहने वाला, जिसके पंख हैं, पर वह उड़ता नहीं ... सदा छिपकर चोर की तरह घूमता रहता है । कभी गाता नहीं, कभी खुलकर बोलता नहीं ।

यह कहकर पतितराम सुबन्धु के सामने माथा झुकाकर खड़ा हो गया, “अगर मैंने आपके कुछ खिलाफ कहा है तो मुझे बेषक सजा दीजिए ... मैं तैयार हूं, उसके लिए !”

सुबन्धु चुप रहा । प्रीतमदास बोला, “मैं नहीं जानता था, तुममें इतनी ताकत है, पतितराम !”

पतितराम बोला, “यह भी कोई ताकत है साहब !”

“नहीं, यह ताकत है ।”

“साहब, ताकत तो वह है, जो किसी को दूर ले जाय । मैं तो सच भंवर में पड़ा था, मुझे रास्ता दिखाया इसी बहू मां ने ।”

तब एकाएक सुबन्धु बोला, "पतितराम, तुम इससे पहले कभी साधू-बैरागी तो नहीं थे ।"

पतितराम सुबन्धु के इस प्रश्न से घबरा गया । वही कभी साधू-बैरागी था, पर यह प्रश्न आज एकाएक सुबन्धु कैसे कर रहा है ? पतितराम की उस प्रश्न से सामना करने की हिम्मत न हुई । उसने झट सारी बात ही बदल दी, "सुबन्धु बाबू, आप मुझे गाली दे रहे हैं क्या !"

"नहीं, मैं तो प्रश्न कर रहा हूँ ।"

"नहीं, यह प्रश्न नहीं गाली है, सरासर गाली ।"

सुबन्धु बोला, "यह अजब बात है ! यह गाली कैसे है ?"

पतितराम ने कहा, "इसके माने यह है कि मैं कोई रटी-रटायी बात कह रहा हूँ ।"

"मुझे यही लगता है ।"

पतितराम का चेहरा स्याह पड़ गया । उसने सब पीकर कहा, "मैंने जो कुछ कहा है, वह मैंने भोगकर कहा है ।"

"यानी सारा कारण मेरा अंहकार है ?"

"जरूर है ।"

"पर यदि अंहकार न हो तो यह जीवन किसलिए ? यह दुख-दर्द, ताप-अनुताप किसलिए ? भाव-अभाव क्या ? सुख-दुख क्या ? फिर तो सब शून्य है, माया है ।"

पतितराम को हंसी आ गयी, "तभी मैंने कहा, आप मुझे गाली दे रहे हैं ! शून्य और माया, इससे बड़ी गाली पतितराम के लिए और क्या हो सकती है ?"

तभी दूरगामी पर श्रीमद्गोस्वामी जी की आवाज गूँजी, "आज का धाम आ गया । बोलो, चीरघाट की जै ! श्री वृन्दावन बिहारी की जै ! राधा-कृष्ण की जै !"

जैजैकार से सारा आकाष वहां गूँज उठा । चीरघाट के चारों ओर षिविर में बत्तियां जल उठी हैं । षरद ऋतु का आकाष चारों ओर निर्मल है । यहीं कृष्ण ने गोपियों की चीर-हरण लीला की थी । कदम्ब के वृक्ष कितने ही हैं यहां । यात्री लोग कदम्ब वृक्ष पर अपना माथा टेक रहे हैं ।

आसपास के गांवों के कितने-कितने लोग, स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे यहां आ रहे हैं - यात्रियों के दर्शन के लिए । वहां आज की रासलीला देखने । आज यहां रासलीला पांच जगह होगी । वहीं एक ही लीला - स्याम सगाई लीला ।

जै श्री राधाबल्लभी जयति !

गांव के लोग रह-रहकर जैजैकार कर रहे हैं । यात्री स्नान, ध्यान, सन्ध्या-पूजन और विश्राम में लगे हैं । होटल में चाय पी जा रही है । आज पतितराम जैजैवन्ती और राहुल को अपने संग लिये होटल में चाय पीने के लिए ले जा रहा है । जैजैवन्ती होटल की चाय नहीं पियेगी । पतितराम ने कहा, "मैं तुम्हारे लिए चाय बनाऊंगा !"

"तुम्हारे हाथ की चाय ?"

"क्यों ... "

"अच्छा, तुम्हारा मन रखने के लिए चाय पी लूंगी ।"

अपना गिलास लिए जैजैवन्ती होटल में पतितराम के संग जाती है । रमोली चौबाइन पतितराम की ओर निहारती है । पतितराम कहता है, “आ, तू भी चल न !”

सबको लिए हुए पतितराम होटल की छोलदारी में आया है । सामने देखा है – प्रीतमदास और सुगन बहू बैठे हैं, बहू के पास सुबन्धु बैठा है ।

जैजैवन्ती मजाक करती है, “तुम ढोते हो बहंगी, और चाय पीते हो अपने मालिक के बराबर !”

रमोली चाय पीती-पीती मुसकराती है ।

पतितराम कहता है, “यहां कोई किसी का नौकर-मालिक नहीं । यहां सब एक ही यात्रा के यात्री हैं । और मेरी मालकिन बहू !” वह तो मेरी मां है !”

“मां है ?” रमोली चौबाइन अब मजाक करती है – “तब तो तुम्हारे दो पिता हुए!”

“कैसे ?”

इसका उत्तर देने में रमोली घबरा गयी । उसका चेहरा उड़ गया । तब वही जैजैवन्ती बोली, “ठीक तो कह रही है रमोली – एक तो प्रीतमदास और दूसरा वही सु” नाम लेते-लेते जैजैवन्ती की हिम्मत छूट गई ।

रासलीला धुरु हो गयी । आज बड़ी घनघोर रासलीला होने को है । आज स्याम सगाई है न ? आज ब्रज की सारी औरतें कृष्ण को गाली देंगी ।

वह गाली राग विलावल में रास की सखियां गा रही हैं :

नवरंगी लाल बिहारी,
तेरे द्वै बाप द्वै महतारी ।
तेरी बुआ कुन्ती रानी,
सो सूरज देख लुभानी ।
तेरी बहन सुभद्रा क्वारी,
सो तो अर्जुन संग सिधारी ।
द्रुपद सुता तेरी भाभी,
सो पांच पुरुष मिलि लागी ।
हम जाने तू हम जाने,
तुम ऊखल हाथ बंधाने !

सारे यात्री इस गाली के रस में जैसे डूब रहे हैं । सुरताल बदलता है । पखावज पर थाप धीमी पड़ने लगती है । हारमोनियम थमी है । वेणु और बीन पर सुरताल सध रहा है । बरसाना से सखियों के संग राधानन्द-गांव के पास चली आयी है । वहीं कृष्ण मिलते हैं । राधा कृष्ण के घर आती हैं । यषोदा जी उस युगल छवि को देखकर मुदित हैं । गा-गाकर प्रार्थना करने लगती हैं कि – हे विधाता, हे सूर्यनारायण, गिरिराज, श्रीवन के खग मृग, वनस्पति, तू कहां होय

तो मेरी विनती सहस्र कान दै कै सुनियी । जैसी ये कुमरि है, वैसे मेरा कनु है । ये कुमरि तो मेरे या कारे कनुआंकूं होय तो आंगन में रून्कि झुनकि डोल्यौ करै और मैं सुखपाऊं । महर आमै तो महर सुख पावै '... !'

यषोदा गा—गाकर विनय कर रही है । राधा पूजा कर रही है, कृष्ण तपक र रहे हैं '... पण्डाल सारे खचाखच भरे हैं । वही प्याम राधा सगाई लीला सर्वत्र हो रही है । बीच में एकाएक नारद भगवान फट पड़ते हैं, "नहीं होगी यह सगाई !"

"क्यों ?" यषोदा रो पड़ती है । महर नन्द हाथ जोड़े खड़े हैं । नारद उत्तर देते हैं, "कैसा ब्याह ! राधा को इतनी छोटी मत बनाओ !"

आधी रात हो चुकी है । षरद की चांदनी कदम्ब, करील, नीम, बबूल, छोंकर और ढाक के पेड़ों पर बिछ गयी है । सारी दिशाओं में रास के वाद्ययन्त्र का संगीत धुल रहा है ।

षिविर में सुबन्धु है '... और है वही सुगन ।

सुगन देख रही है षिविर के ऊपर से चांदनी हल्के कुहास की तरह भीतर झर रही है '... कोई षर्त नहीं '... कोई '... विकल्प नहीं '... और कोई अन्य भाव नहीं ।

13

सुबह हुई । कई बार सुगन ने जगाया, सुबन्धु न उठ सका । तब पतितराम ने उसे जगाने की कोषिष की । सुबन्धु बहुत मुष्किल से जगकर बिस्तरे पर ही बैठा रहा । यात्री सारी चलने की पूरी तैयारी कर चुकी थी । सुबन्धु पर बार—बार तन्द्रा—सी घिर आती और उसे लगता कि उसके चारों ओर कितने लोगों की भीड़ खड़ी है । रात भर उसकी नींद की बेहोषी में भी यही भीड़ लगातार चुपचाप खड़ी थी, उसको घेरे हुए ।

वही दिवंगता मां उठकर पूछ रही है, "अब क्यों नहीं उठा जाता ? अब क्या हो गया ?"

फिर लगता है — ठाकुर महाराज के षिविर में — कहीं वही प्यामली ही—ही करके हंस रही है ।

यात्रा चली । बच्छवन होती हुई वृन्दावन के लिए । वही घनघोर जय—निनाद होना षुरू हुआ । वह तुमुल गान '... वही अकम्पित षत—षत चरण । वहीं जययात्रा, जो न जाने कब से यात्री करता चला आ रहा है — अथक, अकम्प '... ।

सुबन्धु भी चल रहा है, पर जैसे उस पर अब तक वही तन्द्रा छायी है । उस तन्द्रा में ऐसा लगा, मानो उसके सामने कितने—कितने लोग कतार बांधे खड़े हैं । वह जैसे—जैसे आगे बढ़ता है, सामने की वह बंधी कतार पीछे हटती जा रही है । कोई उससे नहीं बोल रहा है ।

बस, वही सुगन की आवाज कानों में आ रही है — "बोली '... अब बताओ '... !"

"सम्पूर्ण—सम्पूर्ण '... केवल सम्पूर्ण," वह अध—नींद में बोल रहा है ।

वह आंखें बन्द करके अषक्त पड़ गया है । सुगन प्यार से कहती है, "आंखें खोलो ।"

उसकी आंखें नहीं खुल रही हैं । बड़ी पीड़ा होने लगी सुबन्धु को । उस में वह बेहद असहाय लगने लगा । लगा, उस यात्रा में सिर्फ अकेला वही है । सारी यात्रा उसे छोड़कर आगे निकल गयी है । उसकी निर्जन यात्रा किसी खंडहर में आ फंसी है ।

इतनी बड़ी घटना हुई, इतनी अपूर्व उत्तेजना – पर कुछ भी तो नहीं हुआ । सुबन्धु की तन्द्रा धीरे-धीरे टूट रही है । उसकी पूर्वषती का वह छोटा-सा टुकड़ा – जिसका कभी कोई इतिहास नहीं लिखा जायेगा, वही धूल में डूबा मानो उसके सामने लौट रहा हो । सन् बयालीस का आन्दोलन

एक बार सुभाष बाबू ने कहा था, “हर कर्म के पीछे संकल्प निर्भय संकल्प पूर्ण संकल्प, जहां अब कोई विकल्प नहीं कोई भय नहीं ।” फिर गांधीजी आये थे, उन्होंने कहा “ हर कर्म के पीछे सत्य और अहिंसा का दर्शन चाहिए ।”

पर यह सब कौन जान सका ! किसके पास इतनी फुर्सत थी, धैर्य था ! सब इतनी तेजी से, सब एक ही साथ कुछ इस तरह हुआ, जैसे आग लगने पर किसी नगर की दशा होती है । उधर दिल्ली, तो इधर कलकत्ता, उधर नोआखाली तो इधर बिहार उधर राजतिलक की तैयारी हो रही थी, तो इधर नोआखाली की षान्ति-यात्रा और आमरण अनशन था । और इस सब के बीच कितनी-कितनी परतें और भी थीं । व्यक्त के राग उसकी वैयक्तिक यातना इसे कौन देखे चारों ओर एक भीड़ उमड़ पड़ी थी ।

उसी बीच तोड़-फोड़ के बीच अरविन्द ने कहा था, “सावधान, इस तोड़-फोड़ में कहीं अपना सब कुछ न तोड़ डालना, इस हत्या और मार में अपनी सब कुछ की हत्या न कर बैठना, इस फूंक-लूट में अपना सब कुछ न जला डालना ।”

आखिर क्यों ? एक आवाज ने भीड़ में से अरविन्द को ललकारा था । अरविन्द ने सौम्य भाव से कहा था – “क्योंकि आगे तुम्हें रचना करनी होगी ।”

कलकत्ता का वही आदिम रूप, जिसे सुबन्धु ने अपने उतने दिनों में भोगा था, उसका वह तिल-तिलकर टूटना-बिखरना, सब एक साथ उसके सामने आ लौटा हो ।

मानो इस यात्रा में आज सुबन्धु अकेला चल रहा है । यात्रा में जो बार-बार जय-जयकार गूंजती है, जैसे वह उसके कानों को नहीं छूती ।

बस एकाएक पतितराम की वही तीर जैसी बात हवा के साथ आज फिर लौट-लौटकर आ रही है : “कहां के हो तुम लाट साहेब, कौन-सी बड़ी करनी है तुम्हारी जो लेकर अपना ही दुखड़ा बैठे रो रहे हो ! रोगी, अभिमानी, तुझे पता नहीं, तुझ से बाहर इस दुनिया में कितना-कितना कष्ट कितना दुख, कितनी यातनाएं हैं ।”

सुबन्धु को आज गुस्सा नहीं आता । उसमें कोई प्रतिहिंसा नहीं जगती, उसे बस हंसी आने को होती है – सबके दुख, सबकी यातनाएं हैं, मेरा दुख इस बात से कम नहीं होता, बल्कि बढ़ जाता है पतितराम, तभी मैं कहता हूं, “तू जरूर कभी साधु रहा है – तभी तेरी दृष्टि इतनी स्थूल है ।” पतितराम मानो उत्तर देता है और वह उत्तर उस हवा में आज

लौटकर आ रहा है : “हां, मैं सूक्ष्म का वर्णन स्थूल ढंग से करता हूँ और तू स्थूल को सूक्ष्म ढंग से सोचता है – अन्तर सिर्फ इतना है । बात वही एक ही है ।”

सुबन्धु को आज उस दिवंगता मां की बात साफ याद आ रही है। वह गीता की बात बड़े घरेलू ढंग से करती थीं । पिता जी सुनते थे । सुबन्धु बचपन में उनके सामने किताबें लिये बैठा करता था । मां काम-काज के बीच में कहती थीं, “एक ओर कौरव सेना, दूसरी ओर पाण्डव सेना आमने-सामने खड़ी हैं, ठीक उसी तरह जैसे सद्गुणी दैवी सेना और दुर्गुणी आसुरी सेना एक-दूसरे के सामने लड़ने को तैयार है और बीच में खड़ा है वही मनुष्य, जिसे तब कर्तव्य के विषय में मोह पैदा हो जाता है कि उसे क्या करना चाहिए । सो वह कुरुक्षेत्र के बाहर भी है और हमारे भीतर भी । दरअसल बात यह है कि जो झगड़ा हमारे मन में ठनता है, वही तब हमें बाहरी जगत् में मूर्तिमान दिखाई देने लगता है । बाहर जो षत्रु दीखता है, वह उसी के मन का विकार साकार होता है ।”

सुबन्धु अपने भीतर ही चिल्ला उठता है : “मां, मैं वह अर्जुन नहीं होना चाहता, मैं वह अर्जुन नहीं हूँ...” मैं वह माध्यम नहीं बनाना चाहता... मेरा इस तरह अपमान मत करो मां !”

तभी सुबन्धु के सामने हिरन की मूर्ति कौंधती है – हिरन – जिसका मन ही वृन्दावन है और वह सुगन है एक जो वृन्दावन को साकार जी लेती है, एक क्षण में सुबन्धु के साथ ! पर सुबन्धु को फिर भी कुछ रास्ता क्यों नहीं सूझता ? कहां गया वह आश्चर्यजनक परिवर्तन ? वह भूख, वह अभाव की हताशा क्यों नहीं धुली ? क्यों नहीं खत्म हुई ?

सुबन्धु को लग रहा था, उसकी वह दबी हुई टी0बी0 उसके रग-रग में फिर सिर उठा रही है । उसके फेफड़ों से रह-रहकर गर्म सांस निकलती और उसे लगता, उसकी खांसी फूट रही है ।

उसी समय सुगन ने थर्मस से गर्म-गर्म चाय निकालकर सुबन्धु को दी । उसने चाय लेते हुए एक करुण दृष्टि से सुगन के मुख को देखा । कितनी पवित्र और अकलुष है वह चितवन ! कितना संषयहीन... जैसे वृन्दावन की ओर बढ़ती हुई यह भूमि, ये पशु-पक्षी, यह जल, यह सारी वनस्पति ।

सुबन्धु ने चाय पी ली । सुगन उसके कान के पास आकर बोली, “चला गया संषय न ?”

सुबन्धु ने बेहद कृतज्ञ भाव से सुगन को देखा । सुगन गद्गद हो गयी । उसने बड़े ही कोमल स्पर्श से सुबन्धु का हाथ छुआ । पर उस हाथ में जैसे कोई चेतना न जगी। सुगन आज यात्रा में अपने सहयात्रियों के संग-संग गा रही है । सुबन्धु को वह गान बिलकुल नहीं छू रहा है ।

सुबन्धु बार-बार सुगन को देख रहा है, जैसे आज वह उसे पहली बार देख रहा हो ; बल्कि उसे पहचान रहा हो । बिलकुल एक नयी सुगन है आज वह । सुबन्धु उसके मुख को देख रहा है, पर वहां आज भी कोई विलक्षणता नहीं । हां, आज यही अनुभव होता है – बिलकुल एक नपे ताल-स्वर से कि सुगन बड़ी खूबसूरत है । आज संसार के सारे सौन्दर्य ने जैसे उसी सुगन के मुखड़े पर अपना आश्रय लिया है । जैसे इसे अब तक न देखा हो । अब तो वह सुगन उसकी अपनी है । यह वह आज कह भी सकता है ।

सुबन्धु ने अपने मन की गहराई में झांककर देखा – उसने देखा, सुगन को, वहां उसके सामने खड़ा है, वही सुबन्धु । सुबन्धु अपने-आपसे कह रहा है : “मैंने जितना दिया, उससे कहीं ज्यादा पाया ।”

और अब वही सुगन यात्रियों के बीच आज गाती हुई चल रही है । आश्चर्य है, सुबन्धु को आज उससे मोह लग रहा है । वह कतई नहीं चाहता, वह उसके पूर्ण अधिकार से कहीं भी जरा बाहर जाये ।

एक बार इसी अधिकार की बात मंझले भाई साहब ने उठाई थी । उन्होंने कहा था, “जो सचमुच बड़े आदमी होते हैं, वे कभी भी अधिकार की बात नहीं करते ।”

तभी सुबन्धु ने पूछा था, “तब यह अपने को पाना क्या बला है ?”

भाई साहब ने कहा था, “अपने को देना ।”

“क्या देना !”

“हां, यही तो बात है !”

मंझले भाई साहब इतना ही कहकर चुप हो गये थे । तब इसका उत्तर दिया था, षण्णार्थी कैम्प में ठाकुर की सबसे छोटी पत्नी प्यामली ने । उसने कहा था, “देना वहां, जहां श्रेयस्कर हो, प्रिय को नहीं देना ।”

“यह कैसी गजब की बात है ।” सुबन्धु बड़े आवेष में विरोध कर बैठा था, और उसके मुंह में तत्काल रक्त आ गया था । उसे बाहर थूककर वह आया था, फिर उसमें तब बोलने की ताकत नहीं रह गयी थी ।

पर सुबन्धु ने अगले दिन उत्तर दिया था, “वह अधर्म है, अस्वाभाविक है, झूठ है । दिया हमेषा प्रिय को जाता है, क्योंकि वही तब वह पाता है । और यही जीवन है ।”

“हां, बस यह जीवन मात्र है, इससे आगे कुछ नहीं !”

“मैं इससे आगे कुछ पाना—देना भी नहीं चाहता ।”

“तभी तुम इतना कष्ट पा रहे हो ।”

यह बात उस प्यामली ने कही थी । आज वह बात सुबन्धु ने झूठी कर दी है । वह खुष है आज ।

पर उससे कहीं ज्यादा प्रसन्न, सन्तुष्ट वह सुगन है ।

क्या उसने अपने को पाने की साधना की है ? नहीं, सुबन्धु अपने भीतर झांक रहा है — मुझे पाने की !

सुबन्धु के माथे पर जैसे किसी ने आग रख दी हो । वही यषोवर्मन का मुख उसके सामने कौंधा । वह मुख ... उसमें से फूटती हुई अट्टहासकारी हंसी ।

— कोई तुम्हें पायेगा ? जैसे उसी मुख से यह प्रश्न निकला — क्यों पायेगा ? तुम्हें पाकर कोई क्या करेगा ?

— तुम तो मेरे दोस्त हो ? तुम्हारे लिए मैंने क्या नहीं किया । सुबन्धु अपने भीतर उस अदृष्य से बात करने लगा — बोलो, तुम ऐसी बात क्यों करते हो ?

— तुम मेरी बराबरी करने चले ।

— क्यों ? मनुष्य—मनुष्य में क्या फर्क है ?

— फर्क है, तभी तो !

— तुम अभाव में पले हुए ...

— तो ?

– पहले का अभाव कभी भी बाद में पूरा नहीं किया जा सकता । अपने पाने के नाम पर यदि तुम अभाव की पूर्ति करना चाहोगे तो अभाव और बढ़ेगा ' ' ' और बढ़ेगा ।

सुबन्धु का रक्त खौल उठा । उसने उस राजकुमार यषोवर्मन के उस अदृश्य मुख को नोंच डालना चाहा ' ' ' पर वह मुख बढ़ने लगा ' ' ' बढ़ने लगा ।

और उस बढ़ते हुए मुख से जैसे सुनायी पड़ा – तुम्हारी मेरे साथ की दोस्ती – वह तुम्हारा ही स्वार्थ था ' ' ' वह सहज कहां था । वह भी वही अभाव की पूर्ति थी ' ' ' ।

सुबन्धु ने अपनी आंखें बन्द कर लीं । कान मूंद लिये । तब सुबन्धु में से ही चीरता हुआ यह लगा – तुम्हारा दर्द तुम्हारे ही स्वार्थ का था । तब कोई क्या करे !

सुबन्धु के सामने वह काले बादल का टुकड़ा कांपने लगा । लगा कि अब वह आसमान में से उड़ने वाला है ।

वह दौड़कर सुगन के पास गया । उसके दोनों हाथों को कसकर पकड़ने लगा ।

सुगन ने पूछा – बोलो, क्या चाहते हो ?

सुबन्धु रो पड़ा – निःशब्द ' ' ' और कुछ न बोल सका । इसी तरह सुबन्धु की वह महाजननी पूछती थी – बोल, क्या चाहता है ? बोल न !

सुबन्धु कुछ नहीं बोल पाता था ।

क्योंकि वह कुछ नहीं समझ पाता था ।

सीधा ' ' ' पवित्र ' ' ' संस्कारवान सुबन्धु ।

सुगन की दोनों मुट्ठियां सुबन्धु की उस पकड़ में जैसे टूट जायेंगी ।

– बोलो न ' ' ' कुछ तो कहो । चलो, इषारा ही कर दो न !

– मुझे डर लग रहा है ।

– छिः ! कैसे पुरुष हो !

सुगन ने बड़े प्यार से सुबन्धु की आंखों में देखा ।

– तुम्हें डर नहीं लगता, सुगन ?

– क्यों लगे डर ?

– क्यों न लगे ?

– क्योंकि जो कुछ मैं करती हूं, वही मैं ही हूं ।

– पर ऐसा मैं क्यों नहीं सोच पाता ?

– तुम सोचोगे एक दिन !

उस महायात्रा में सुगन ने सबके बीच सुबन्धु का माथा चूम लिया ।

उसी समय सुबन्धु का ध्यान एकाएक टूट गया । पतितराम कन्धे पर बहंगी लटकाए आज कोई विरहा अलाप रहा है । नहीं राम, वह कोई कहरवा गा रहा है ।

“बड़ा देहाती है तू ?” जैजैवन्ती कहती है ।

“हां, पूरा देहाती हूं ।” पतितराम उसी गीत में ही अपना जवाब जोड़कर गा देता है ।

लेकिन पतितराम की नजर जैसे ही सुगन बहू पर पड़ती है, उसका सारा गीत गुम हो जाता है । वह परम आश्चर्य से निहारता रह जाता है – सुगन बहू आज गा रही है ! बड़े ध्यान से बहू का सुर सुन रहा है । आज तक उसने सुगन बहू को गाते नहीं सुना था । न उनके चेहरे पर इतनी प्रसन्नता कभी देखी थी । कैसी वे आर-पार दिख रही हैं ।

ऐसे ही आर-पार उन्होंने एक दिन पतितराम को देखा था । कानपुर में कभी प्रीतमदास को पतितराम ने अपने रिक्शा से उतारकर उन्हें उनकी कार में संभालकर बैठाया था ।

मालिक ने सुगन बहू से कहा था, “इस रिक्शे वाले को आठ आने और इनाम के दे दो ।”

बहू ने कुल दो रूपये दे दिये । मालिक ने मेरी ओर घूरकर देखा । मैंने सलाम नहीं किया । इनाम पाने पर सलाम करना मुझे न जाने बहुत अखरता था । मेरी इस बुरी आदत से मेरे रिक्शावाले दोस्त मुझे अकसर डांटते थे – “अबे ओ पतित साले ! हाथ जोड़कर आदाब बजाता है कि...” और दूसरा रिक्शावाला समझाता है, “बम्बई में होटल के बेयरा लोग टिप पाने के बखत जैसे विलायती मार्का सेलूट देता है न, वैसा ही मार ! न कोई देख पाये, न कोई जान सके !”

पर पतितराम को उतना सब समझाने पर भी उस वक्त भी सलाम करना नहीं आया था । मालिक उस समय बहुत थके थे, रोग के कारण दुखी भी ।

उनकी बात अचानक मेरे कान में पड़ गयी, “बड़े बत्तमीज हो गए हैं आजकल के छोटे लोग । देखा न, किस तरह इनाम लेकर पी गया !” मुझे और कुछ न सूझा । मैंने दोनों रूपये कार के खुले दरवाजे पर रख दिए, और तब सलाम करके रिक्शा आगे बढ़ाने लगा । तभी सुगन बहू ने पुकारा था, “ओ, रिक्शावाले !”

मैं नहीं रुका ।

बहू कार से नीचे उतरकर मुझे पुकारने लगीं । तब मुझे वापस आना पड़ा, “हमें माफ करना, मेहरबानी करके रूपये तो ले लो !” पता नहीं मुझे उस समय क्या हुआ, मैं हाथ जोड़े उस समय बहू के सामने चुपचाप खड़ा रहा । बहू ने पूछा, “तुम्हारा नाम क्या है ?”

“पतितराम !”

“मेरे यहां नौकरी करोगे ?”

मैं फिर वही चुप । तभी मालिक बोले थे, “यह क्या काम करेगा ? यह तो बहुत मोटा-सा हुआ है । देखा नहीं, ताब में आकर रूपये फेंक दिए ।” मेरे मुंह से निकला, “हां, साहब, मैं अच्छा आदमी नहीं हूं ।”

बहू बोली थीं, “नहीं, यह आदमी अच्छा है ।”

पतितराम रिक्शा जमाकर माल रोड के उस होटल पर अगले दिन सुबह ही सुबह गया था । तभी से उसे मालकिन ने नौकर रख लिया था । यह अभी कुल तीन साल पहले की बात है । तब से उसने कितना-कितना नमक-पानी

खाया-पिया है, उसे सब याद है । जिन्दगी में यह पहला ही मौका है कि एक ने पतितराम पर इतना विष्वास किया है, वरना पतित का कौन विष्वास करता है ।

पतितराम ने यह अनुभव किया है पहली बार कि विष्वास देना और पाना किसे कहते हैं । और इसी सुगन बहू ने विष्वास के आगे की भी दुनिया दिखायी है ।

उसी आगरा की कोठी में सुबन्धु को पहली बार पतितराम ने देखा था । वे बुलाये गये थे, बहू का मन बहलाने, पर हुआ था उल्टा । बहूरानी ने उल्टे सुबन्धु बाबू का मन बहलाना शुरू किया था । पतितराम को अजब लगा था वह दृष्य ।

“सुबन्धु बाबू, चलिए, भोजन कर लीजिए ।” बहूरानी मनुहार करतीं ।

“नहीं, मुझे भूख नहीं है ।” वे उत्तर देते ।

फिर एक लम्बी चुप्पी खिंच जाती ।

“अच्छा, सुबन्धु बाबू जाइए, आप आराम कीजिए । काफी रात हो गयी है ।

“नहीं, मुझे नींद नहीं आती ।”

“क्या हो गया है ?”

“पता नहीं ।”

“आखिर !”

“कहा तो, अगर पता ही होता, तो नींद को बुला न लेता !”

ऐसे ही चलता रहता । पतितराम सुबह की चाय लेकर उनके कमरे में जाता, तो वे तुनककर कहते, “बहू जी को भेजो !” मैंने एक दिन जवाब दे दिया, “बहू जी को अभी फुर्सत नहीं है ।”

“क्या कहा ! बदतमीज कहीं का !”

“साहब, आप जवान संभालकर बात कीजिए, नहीं तो”

वही चाय भरा कप उन्होंने पतितराम के ऊपर फेंक दिया था । उसी समय बहूरानी दौड़ी हुई कमरे में आयी थीं । उसे दरवाजे के बाहर ढकेलकर उन्होंने सुबन्धु को संभाल लिया था ।

“अच्छा, अच्छा, माफ करो ! क्षमा करो”

फिर अपने हाथ से दुबारा चाय बनाकर बहूरानी उनके कमरे में ले जाती ।

तब वे लाट साहब चाय पीते । पतितराम ताज्जुब में पड़ जाता, “बाप रे, इतनी नवाबी कहीं न देखी !”

वही आश्चर्यभाव पतितराम की आंखों के सामने आज तक खिंचा हुआ है । और आज इस यात्रा में सुगन बहू का यह गान सुनकर वह आश्चर्य की सीमा पर पहुंच रहा है ।

पतितराम उसी आश्चर्य में आकाष-पाताल सोच रहा है । सुगन बहू ने एक दिन कहा था, “पातिव्रत्य का अर्थ है एकनिष्ठता . . . पर इस एकनिष्ठता से आगे भी कुछ है ।”

“पर उस आगे में अगर कहीं छल है तो ?” पतितराम ने पूछा था ।

बहू ने साफ उत्तर दिया था, “तब तो महानाष है । केवल मृत्यु ।”

गीत भरी निगाह से एक बार सुगन बहू ने पतितराम को देखा, फिर उन्होंने आंखें झुका लीं । पतितराम को लगा, बहू का तन—मन एक अद्भुत अनुभूति से गा रहा है । ऐसी अनुभूति जो किसी तप में होती है, किसी कठोर निष्ठा में ।

जैजैवन्ती ने पतितराम से पूछा, “तुमने एकाएक अपना गाना क्यों बन्द कर दिया?”

पतितराम ने मुसकराकर कहा, “क्यों तुम साथ जो नहीं देतीं !”

“क्या मतलब ?”

“मतलब यही कि तुम क्यों नहीं गाती ?”

“बताओ, मैं किस मन से गाऊ !”

“किस मन से ? ... किस मन से तुम इस यात्रा में आयी हो ?”

“भगवान के मन से !”

जैजैवन्ती यह कहकर पतितराम को देखने लगी । पतितराम ने कहा, “अगर कहीं भगवान है, तो उसका वह मन हम सभी तो हैं । इसी मन के लिए कुछ गाओ न !”

“अच्छा बताओ, तुम किस मन से गाते थे ?”

“वही मन, जो भगवान का है ... तुम्हारा भगवान !”

“तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आती ।”

“मैं बड़ा अभाग जो हूँ ! जिस दिन जनम पाया था, मां बताती थी, उस दिन बड़ी भयानक आंधी आयी थी । घर के सारे छप्पर हवा में उड़ गए थे ।”

जैजैवन्ती पतितराम के मुख को निहारती है । बच्चा दोनों के बीच में चलता हुआ, “काकू—काकू” पुकार रहा है ।

“काकू, हमारा घर कहां है ? बताओ, काकू ... !”

“मैं नहीं जानता, तुम्हारा घर कहां है बेटा !”

जैजैवन्ती बताती है, “जिला फतेहपुर, गांव तिकोनी ... और ...”

“और ... और क्या ? वह भी बताओ न !”

“तिवारी ब्राह्मण ।”

जैजैवन्ती इतना कहकर पतितराम से फिर पूछती है, “और तुम्हारा घर ?”

पतितराम को याद है, इस प्रश्न को जैजैवन्ती ने इस यात्रा में कितनी बार पूछा है । पर वह पतितराम के उस छोटे—से उत्तर को नहीं याद रख पाती कि पतितराम का घर कहीं नहीं है । बस, नीचे धरती, ऊपर आसमान ...

आज सहसा वह राहुल बोल पड़ता है, “मेरा घर है, तो वही मेरे काकू का घर है । हम वहीं रहेंगे ... !”

जैजैवन्ती ने राहुल के सिर पर झट से चपत मारा । वह चीखकर रोने लगा । पतितराम खड़ा चुपचाप देखता रहा । मां ने राहुल को अपने अंक में भर लिया — फिर मां भी फफककर रो उठी ।

यात्रा बच्छवन को पार कर अब वृन्दावन की ओर बढ़ रही है । दोपहर से कुछ अधिक ही समय हो गया है । जमुना की ओर से आती हुई षरद वायु यात्रियों को बांध रही है ।

हिरनमयी जैसे अपने मन में ही यात्रा कर रही है । उसने आज सुगन के गीत सुने हैं । वह गाती थी, तो लगता था, अंधेरे में कुछ झिलमिला रहा है – जैसे दूर से जलता हुआ कोई चिराग हो । जैसे कोई दूर से बांसुरी बजाता हुआ चला जा रहा हो ।

हिरनमयी माथा उठाकर उस भीड़ में सुबन्धु को ढूँढ रही है । वह कहीं नहीं दीख रहा है । उसे बड़ी बेचैनी—सी लगने लगी । लगता था, यदि कहीं सुबन्धु दिखाई देता, तो जी कुछ हल्का हो जाता ।

अचानक पैरों की आहट से वह चौंक उठी, “कौन ?”

“मैं हूँ ! आज तुम्हारा गीत नहीं सुनाई पड़ा । वही सुनने चला आया !” यह वही सुबन्धु है । बेहद थका हुआ लग रहा है । हिरनमयी ने पूछा, “तुम कहां थे अब तक ? मैं तुम्हें देख रही थी, पर तुम कहीं नहीं दीखते थे ।”

“अरे, मैं तुम्हारे पीछे—ही—पीछे तो चल रहा था ।”

“अब भी पीछे—ही—पीछे चलोगे ?”

हिरनमयी ने विनोद किया ।

सुबन्धु बोला, “अब वही वृन्दावन आ रहा है । वही तुम्हारा मन । उस मन में निष्चय ही एक आगे होगा, एक पीछे ।”

“नहीं, मन में सब एक साथ है । सब संषयहीन ।”

हिरनमयी हंस पड़ी । उसी में सुबन्धु भी ।

हिरन ने अचानक पूछा, “सुगन बहुत खूबसूरत है न ?”

सुबन्धु इस प्रश्न से न जाने क्यों अवाक् रह गया । उसे कहना चाहिए, हां, बहुत ही खूबसूरत है वह । अपूर्व सुन्दरी । परितृप्त करने वाली — एक महान स्त्री ।” पर उसके मुंह से कुछ नहीं फूटता । उसका सारा—का—सारा झूठ और संषय अब तक उसके माथे पर उसी तरह रखा हुआ है । उसमें कोई दरार तक न पड़ी । कहां ले जाय इतना सब बोझ वह ? इसे कब तक उसे ढोना पड़ेगा ?

सुबन्धु अकस्मात् बोल पड़ा, “हिरन, तुम्हारी स्मृति मुझे जिन्दा नहीं रहने देगी ।”

“बताओ, मेरी स्मृति खत्म कैसे होगी ?”

“यह तुम्हीं बता सकती हो ।”

“पर इसे खत्म कौन करेगा ?”

“वह शायद कभी खत्म नहीं होगी ।”

हिरन चुप रह गई । सुबन्धु का सत्य बड़ा कठोर है — सच, स्मृति कभी खत्म नहीं होती । वही स्मृति जिन्दा रखती है, समारोह बन—बनकर मन को बांधे रहती है । सौरभ की तरह अन्तस में महकती रहती है । जीवन और प्रेम के नये—से—नये द्वार खेलती है । पर वही स्मृति सुबन्धु को एक दूसरे छोर पर हर वक्त पीछा कर रही है ।

सुबन्धु बोला, “तुम्हारा मन वृन्दावन है, पर मेरा मन कुरुक्षेत्र है । वह कुरुक्षेत्र जहां महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया है । वहां एक अंधेरा उतरकर बैठ गया है । और यह मेरा मन एक अर्जुन है, जिसे न गीता पर विष्वास है, न हिमालय में जाकर गलने में ।”

हिरन बोली, “सच बताओ, तुम्हें मेरे वृन्दावन पर विष्वास है ? भरोसा है ?”

“मैं उत्तर नहीं दे सकता हिरन, न मैं तुमसे अपनी इस असमर्थता के लिए क्षमा ही मांग सकता हूँ ।”

“फिर क्या होगा ?”

“लगता है सारे प्रश्नों का अब अन्त आ गया है ।”

“कैसे ?”

“लगता है मुझे ! आधा उत्तर सुगन ने दे दिया है ।”

“और आधा ?” हिरन ने पूछा ।

सुबन्धु ने आंखें बन्द कर लीं । जैसे उसके माथे का बोझ अब और दुगुना हो गया है । मां ने एक बार मंझले भइया को डांटते हुए कहा था, “अगर चेतना से नमक का स्वाद ही मिट जाय, तो उसके लिए दुनिया में कहां से नमक आयेगा ?”

हिरन ने पूछा, “सुबन्धु, तुम्हीं ने एक दिन कहा था न, कि जो प्राप्त है, मिला है, उसे कोई प्यार करे तो जानूं !”

“हां, कहा था । यह सच है, उसे कोई नहीं प्यार करता !”

हिरनमयी ने देखा, वृन्दावन अब समीप आ रहा है । वृन्दावन एक उसके मन का, प्राण का, और यह वृन्दावन यथार्थ । आगे से श्रीमद्गोस्वामी की दूरगामी आवाज आ रही है । यात्री लोग वृन्दावन-बिहारी की जैजैकार करने लगे हैं । आकाश उस तुमुल नाद से भरने लगा है । बरसाना में जो रासलीला देखी थी, जिसमें राधा नाराज होकर अपने सारे षरीर को लुप्त कर लेती है, केवल उनकी आंखें-ही-आंखें रह जाती हैं — वहीं आंखें आज हिरनमयी के चारों ओर खिंच उठी हैं । ये आंखें इस समय आंसुओं से धीरे-धीरे भरती जा रही हैं । तब हिरनमयी के कण्ठ से अनायास झरने लगता है :

मरन रे प्याम तुम्हरि नाम
चिर बिसरल जब निर्दय माधव
तुहिन भइनि मोय बाम
आकुल राधा रिझ अति जर्जर
जरइ नयन दुउ अनुखन झर झर

हिरनमयी का सारा मुख भीग रहा है । वक्षस्थल पर उसका ताप छन रहा है । सुबन्धु पीछे रह गया है । हिरन का पति पुभ्राषुं कहता है, “दिस इज आल एर्ब्स ! रिडीकुलस !”

हिरनमयी सिर्फ उसकी ओर निहारकर रह जाती है । तब पुभ्राषुं हंसकर कहता है, “इस देख का इतिहास तभी इतने पीछे बहकर चला जाता है । आंसू और ‘इमोषन’ से कुछ कहीं आगे बढ़ सकता है ? फ़ैक्टरी में आठ घंटे काम करना पड़े, तो सब ‘न्यूरसिस’ मिनट में दूर हो जाये । ईडियट ‘... नानसेन्स ...’ ”

“किसे गाली बक रहे हो ?” हिरन ने पति से पूछा ।

“अपनी इस कौम को !”

“क्यों ?”

“काम न काज, सिर्फ वही आंसू ‘... सिर्फ वही अतीत की स्मृतियां ‘... वही मरन ‘... वही घुटन ‘... ! अरे बाबा, यह सब मिडीवल है ‘... ‘मिडीवल’ सारा ‘फ्यूडल’, पता नहीं कब आधुनिक पुरु होगा । आई मीन विज्ञान और विवेक ।”

“विज्ञान और विवेक से सब कष्ट—पीड़ा दूर हो जाएगी ?”

“दूर न सही, कम तो हो जाएगी बाबा ! खुली हवा में बैठकर एक कप गर्म—गर्म कॉफी तो पियेंगे ।”

हिरनमयी को हंसी आ गयी । कितनी हलकी—सी समस्या है शुभ्राणुं की !

वृन्दावन ! षरद की पूर्णमासी रात । वृन्दावन के पश्चिमी यात्रियों का पड़ाव लगा है । बिलकुल जमुना के तट पर । शाम से ही मृदंग, पखावज, वेनु, सारंगी बज रही है । आज यहां महारास की लीला होगी । आदिवद्री, गहबरवन, राजघाट, वंशीघाट, रंगमन्दिर, अकूरघाट, उद्धवपुरी, दावानल, कालीदह, श्रृंगारवट, रासकुंज से राधाकृष्ण की प्रतिमाएं यहां लायी जायेंगी । वर्ष भर राधा प्यासी रहती है — इसी षरद पूर्णिमा की रात महारास लीला में उनकी प्यास बुझती है ।

प्यासी राधा !

हिरनमयी नीचे से ऊपर तक आज प्खेतवस्त्र पहने है । जूड़े में केतकी के पुष्प गुंथे हैं । चारों ओर कुछ बहुत तेज महक रहा है, जैसे पूरी षरद की वह चांदनी पागल हो जायेगी ।

आधी रात हो रही है । चारों ओर महारास की लीलाएं शुरु हो गई हैं । पखावज और मृदंग पर वेनु और मंजीर का राग उमड़ रहा है ।

हिरनमयी बिलकुल एकान्त में — करील के एक घने कुंज के पीछे सुबन्धु से पूछती है, “सगुन को तम प्यार नहीं करते ?”

“नहीं !”

“पर वह तो तुम्हें सम्पूर्ण प्रेम करती है । कितनी महिमामयी स्त्री है वह !”

“नहीं ।”

“तुम्हारा संषय उससे दूर नहीं हुआ । . . . तुम वही अभाव हो ?”

“हां, मैं”

हिरन ने उसे रोककर कहा, “आंखें बन्द करके एक अद्भुत सम्मोहन भाव में — तुमने ही चाहा है, मैं सारे सुख और सारी यातनाएं भोग लूं लो, मैं प्रस्तुत हूं !”

हिरन ने हंसिनी की तरह उसी सम्मोहन में अपनी बांहें फैला दी, जैसे वह आज कहीं उड़ जाना चाहती हो । सुबन्धु पागल की तरह उसे देखने लगा । और उसी क्षण सुगन के षिविर से एक भयानक करुण चीख कौंधी । षिविर में आग लगी है । जैसे दावानल ! आग की लपटें षरद की उस चांदनी में धुल रही हैं ।

देखते-देखते सुगन की उस महाग्नि की आभा बुझ गयी । जब तक वह आग धू-धू करके जली थी, सुबन्धु उस अग्नि-घेरे के चारों ओर चिल्लाता हुआ घूमा था ।

फिर उसके बाद वह वहां से न जाने कब अदृश्य हो गया ।

पतितराम अब सुबन्धु को तलाष रहा है । रात से सुबह हुई । सुगन बहू की अर्थी उसी हिरन ने सजाई थी । जैसे वह उसीकी अर्थी हो । उसी हिरन की ही तो वह नियति थी, जिसे अदृश्य महाकाल ने उस तरह उलटफेर कर दिया था । अर्थी को सजाकर वह उसके राख जैसे चरण पर गिर पड़ी थी ।

एक ओर पतितराम, दूसरी ओर प्रीतमदास – सुगन की वह अर्थी अद्भुत थी । अर्थी का मुंह ढका था, पर उसने मनुष्य के सत्य को नहीं ढंकने दिया था । वह यात्रा जमुना के तट पर जाकर खत्म हो गयी ।

सुबह से सांझ हो गयी । पतितराम सुबन्धु की तलाष में दौड़ता रहा । वृन्दावन से मथुरा ' ' ' मथुरा से आगरा ' ' ' और आगरा से सुबन्धु का वह कस्बा । सुबन्धु का कहीं पता न था । पतितराम भाग रहा है । फिर इस कस्बे से वहीं आगरा । आगरा सिटी, आगरा कैण्ट ' ' ' कहीं कोई पता नहीं । सांझ हो गयी है । वह फिर मथुरा के लिए रवाना होता है ।

मथुरा स्टेशन पर आकर वह रिक्शेवालों से पूछताछ शुरू करता है । छावनी, सदर बाजार, डैम्पियर नगर, सारी जगह ढूंढता है । काफी रात बीत चुकी होती है । कोई इच्छा नहीं कि वह लौटकर वृन्दावन जाये । उनकी भी यात्रा जैसे अब समाप्त हो गयी है । कन्धे की बहंगी को उसने वहीं छोड़ दिया है ।

सड़क के किनारे एक पुलिया पर पतितराम बैठ गया है । उसकी छाती बेतरह धड़क रही है । जैसे वह सुबन्धु के साथ-ही-साथ अपनी सुगन बहू मां को भी तलाष रहा है । उसी बहू मां ने एक दिन पतितराम से कहा था, "जिन्दगी बेमतलब थोड़े ही है, कि जैसे मिले वैसे जीते चले जाओ ! इसका एक सुरताल है भाई पतितराम !"

बजते-बजते जैसे सांरगी का मध्यम तार एकाएक टूट जाता है और उसकी झनझनाहट खिंची रह जाती है, उसी तरह बहू मां की याद पतितराम को आ रही है । वह रोने चलता है, तो लगता है, वही सुगन सामने खड़ी होकर डांट रही है, "रोता है ? रोने से कुछ होगा रे ? जब से दुनिया बनी है, तब से आज तक मनुष्य जितना रोया है, उससे तो अब तक एक सागर भर जाता । पर कहीं पता है उसका ! अरे, असल चीज है मन का सच । जब यही सच धोखा दे जाये, तो फिर क्या जीना ! – हां जी, ठाट से आये थे, ठाट से चले गये ! अपने को मलिन क्या करना !"

यह कहकर सुगन मां खिलखिलाकर हंस पड़ी थीं । सुबन्धु से उनकी उम्र काफी कम थी, पर वे सुबन्धु को समझाती थीं, "क्यों ? कुछ करने आये हो कि यही झख मारने ? पता भी है, कितना ऋण है तुम्हारे ऊपर ?"

"कैसा ऋण ?"

सुगन बहू बच्चों की तरह सुबन्धु को जीभ दिखाकर भागी थी ।

आज वहीं पतितराम उस निर्जन पुलिया पर अवाक् बैठा है । उसके सामने जिन्दगी का एक और गहन अर्थ झिलमिला रहा है । वही षरद की चांदनी आज भी उसके माथे पर जमी हुई है । पर वह कभी अब उसे छू नहीं पायेगा । पुकार नहीं सकेगा । उससे कुछ और नहीं पूछ सकेगा ।

वह पुलिया से उठकर निरुद्देश्य सड़क पर चला जा रहा था । सड़क दायीं ओर मुड़ती है । वह उसी मोड़ पर थम जाता है । स्टेशन की ओर देखता है । दिल्ली मेल आयी है । वह स्टेशन की ओर भागता है । प्लेटफार्म पर जाकर वह

यात्रियों में ढूँढने लगता है । मेल चली जाती है । तब वह वेटिंग रूम में जाता है । वहां सहसा देखता है — सुबन्धु एक बेंच पर औंधा पड़ा है — बेहोष । बेंच पर, बेंच के नीचे फर्ष पर खून के चकते । खून सुबन्धु के मुंह से झरा है । वह अचेत है । वेटिंग रूम में और कोई नहीं है। सिर्फ दीवार पर एक बल्ब जल रहा है ।

पतितराम का सिर घूमने लगता है । वह एक कुरसी थाम कर वहीं बैठ जाता है । वह उठकर सुबन्धु को छूता है । उसकी देह जल रही है । सुबन्धु पर खांसी का दौरा पड़ता है । वह उसी बेहोषी में खांसता है, और खून के कतरे फर्ष पर फैलने लगते हैं ।

पतितराम पानी ले आता है । सुबन्धु का खून में डूबा हुआ मुंह धोता है और उसके जलते माथे पर अपनी गीली हथेली जमाए हुए वह एकटक उसके मुंह को निहार रहा है । पलकें आधी बन्द हैं : जैसे सुबन्धु कुछ कह रहा हो ।

“सुबन्धु बाबू !” पतितराम धीरे से पुकारता है ।

आंखें खुलती हैं, फिर उसी तरह बन्द भी हो जाती हैं । आंख से आंख, पर नहीं मिल पाती ।

वेटिंग रूम का चौकीदार आता है ।

पतितराम उससे पूछता है, “वह बाबू यहां कब आया ?”

“मुझे नहीं पता, मेरी ड्यूटी अभी—अभी लगी है ।”

पतितराम अपने अंगोछे से सुबन्धु का मुंह पोंछता है । उसकी कनपटी, कन्धा, कण्ठ सब पर खून के ताजे धब्बे लगे हैं । फिर बेंच पोंछता है, और फर्ष पर अंगोछा बिछाकर वह सारे खून को ढंक देना चाहता है । पर खून तो खून । वह उतना ही सिर उठा—उठाकर अंगोछे को सराबोर करके झांकने लगता है । वह रक्त गीले अंगोछे को बाथरूम में ले जाकर उसे गार आता है, और उस तरह आते—जाते उसे सिर्फ याद आता है उसी सुगन बहू का वह मुख । वही तार की तरह बजती हुई हंसी ।

कितना क्षुद्र निर्बल है मनुष्य !

पतितराम को बार—बार यही आ रहा है । वेटिंग रूम का चौकीदार रजिस्टर लिए हुए आता है — पतितराम उसे दूर ही रोक लेता है, ताकि वह सुबन्धु की दशा न देख सके। “क्या है ?” पतितराम पूछता है ।

चौकीदार कहता है, “टिकट नम्बर नोट करो, और यहां दस्तखत कराओ !”

“टिकट नम्बर ?”

“हां, कहां जाना है ?”

“कहां जाना है ?”

पतितराम सहसा संभल गया । उसने झट दो रुपये निकालकर चौकीदार के हाथ में रख दिये । उसने बाकायदा झुककर सलाम किया । आज जान सका पतितराम उस सलाम का पूरा अर्थ । कानपुर में, उस रोड पर सुगन बहू और मालिक के सामने उससे तब सलाम करना नहीं आया था । उसके साथ के रिक्शावाले दोस्तों ने तब पतितराम को गालियां दी थीं ।

सहसा सुबन्धु के मुख से एक कराह आयी । वह करवट बदलना चाहता है । पतितराम ने उसे पकड़कर करवट बदलना चाहा, तभी सुबन्धु की वह अधखुली आंख उसकी आंख से मिल गयी । लगा, जैसे षरीर भर में बिजली तड़प गयी है ।

सुबन्धु के मुंह से एक क्षीण-सी आवाज आयी – पतितराम !

पतितराम उसके मुंह के पास झुक आया । सुबन्धु को धीरे-धीरे होष आ रहा है – वह कहां पड़ा है, उसे पता नहीं, किन्तु उसे यह पता है कि वह अब मरने जा रहा है । उसे लग रहा है, वह किसी दलदल भूमि पर अषक्त लेटा हुआ है । आज से नहीं, न जाने कब से ! कितने-कितने वर्षों से !

सुधि आती है, फिर उसी दलदल में गड़कर खो जाती है । फिर सुधि लौटती है, पानी की लहर में वह अब सब कुछ साफ-साफ देखने लगता है । पर अब वह कुछ पकड़ नहीं सकता । लहर फिर उसी तरह लौट जाती है । अविश्वास और संषय के अस्थिपंजर, घोंघा-काई, सेवार-पात तब किनारे पर जमा हो गये हैं । लहर अब निर्मल हो गयी है – जैसे उस दिन की षरद पूर्णिमा में ...

सुबन्धु की मुट्ठी बंधती है, पर फौरन वही ढीली होकर केले के छिलके की तरह बेंच पर रख उठती है । वह फिर मुट्ठी बांधना चाहता है पर अब बांध नहीं पाता । पर वह मरने के पहले किसी भी तरह अपने पुण्य से न सही, उस जननी मां के पुण्य से अपनी मुट्ठी जरूर बांधेगा, और नदी के इस तट पर इस तरह छोड़े हुए अविश्वास और संषय के अस्थिपंजर घोंघा-काई, सेवार-पात सब को कसकर इस दलदल में गाड़ देगा !

सुबन्धु की बन्द आंखों में जैसे मेला लगा है । कितनी-कितनी यात्राएं उसमें चली जा रही हैं । कितने-कितने लोग भीड़ लगाये खड़े हैं । उस दुर्गन्ध बाबा ने – उस कुन्द ने इसी यात्रा में ही तो कहा था, “आदमी कितना भी मर जाय, पर उसका विश्वास न मरे !”

सुबन्धु उस भीड़ के सामने हाथ जोड़े खड़ा है, कह रहा है, “मुझे तो आज जन्म मिला है, मुझे तुम सब उठाये हुए चिता की ओर क्यों ले जा रहे हो ?”

सुबन्धु की आंखें बन्द हो जाती हैं । मुंह से फिर खून बह जाता है । पतितराम उस खून को अंगोछे में ले लेता है ।

पतितराम पूछता है – “सुबन्धु, तुम घर चलो अब ! चलो, मैं ले चलूंगा तुम्हें ! सुबन्धु ... !”

“नहीं !” सुबन्धु क्षीण स्वर में कहता है ।

“डाक्टर बुलाऊं ?”

सुबन्धु, हाथ बढ़ाकर पतितराम का हाथ पकड़ लेता है । पतितराम कांप उठता है । वह सुबन्धु को इस तरह दूँढता फिरा था किसी और प्रयोजन से । वह उससे कुछ सवाल पूछने के लिए उसे खोजने आया था । पर यहां ऐसा लग रहा है, सुबन्धु अपनी हर टूटती सांस से उसी पतितराम से ही प्रण कर रहा है । सुबन्धु पतितराम का हाथ थामे रह जाता है

सुबन्धु की यह बात पतितराम के हृदय में आर-पार हो जाती है । उसकी आंखें बन्द हैं । सांस बड़ी तेज चल रही है । सुबन्धु में असह्य पीड़ा है, पर वह कराहता नहीं । बस, आधी आंख खोलकर जिस तरह से वह देखता है तो डर लगता है ।

पतितराम ने उसके माथे पर हाथ फ़ैरते हुए धीरे से कहा, “आंखें बन्द कर लो !” पर उसकी आंखें अधखुली ही हैं । वह उसकी आंखों पर हाथ फेरकर फिर कहता है, “आंखें बन्द कर लो !”

सुबन्धु सिर हिलाकर कहता है, “नहीं ।”

आंखें बन्द नहीं होतीं । इनमें बहुत भीड़ बढ़ रही है । आंखें बन्द होंगी, तो ये सब लोग कहीं इनमें फंसे न रह जाएं ! जो बन्दी रहा हो, वही जानता है कैद किसे कहते हैं । सुबन्धु उस भीड़ से कह रहा है, “सुनो, मेरा यह मन अब बन्दीगृह नहीं है । अब टूट गया । इसके सारे बन्द दरवाजे जल गये ।”

धीरे-धीरे भीड़ छंट रही है । षरद पूर्णिमा सारे मन के आकाश में छा रही है । चांदनी घुलती जा रही है । हिरनमयी कहती है । लो, ‘तुम्हारा संषय षेष न रह जाये ।’

‘क्यों ?’

‘नहीं तो वह मेरा संषय बनकर रह जायेगा । इस यात्रा में संषय कैसा ?’ सुबन्धु का संषय, झूठ और मनोविकार कुण्डली मारे खड़ा है । सुगन उसे देख लेती है । पहचान जाती है । सुबन्धु ने विष्वासघात किया है ।

‘मैं तुझे मारूंगी ।’ थर्मस की चाय में विष खोलकर तैयार किया गया है । वही चाय सुबन्धु को दी जाएगी । विष्वासघात की प्रतिहिंसा मिलनी चाहिए । सुगन उस छंटती हुई भीड़ में सबसे आगे आती है । विष मिला हुआ चाय का प्याला उसके हाथ में है । हाथ सहसा कांपने लगता है । नहीं ‘... नहीं ‘... मुझ में मारने की षक्ति नहीं है, सिर्फ मरने की षक्ति है क्योंकि मैंने प्यार किया है । संषयहीन प्यार ‘... सम्पूर्ण प्यार ‘... सुगन अपने हाथ का वह प्याला उसी दलदल भूमि पर फेंक देती है ।

‘मुझ में सिर्फ मरने की ताकत है ।’ सुगन चारों ओर से उस दिन षिविर के द्वार भीतर से बन्द कर लेती है ।

और अपने पर वही आग !

वहीं मार !

सुबन्धु आंखें खोलकर देखने लगता है । पतितराम चुपचाप उसके सामने बैठा है । सुबन्धु धीरे से कहता है, “तुम सो जाओ ‘... सुबह हम दोनों फिर यात्रा में चलेंगे ।”

“यात्रा में ‘... !”

“हां, यात्रा नहीं रूकेगी ।”

“हां, बिलकुल ‘... ”

“भूख लगी है ? कुछ खाना-पीना चाहोगे ?”

“नहीं !”

“अच्छा, तुम सो जाओ ‘... !”

पतितराम अपनी चादर उसके ऊपर ओढ़ा देता है । सिर से पांव तक । सुबन्धु अपने मुंह पर से चादर हटाता है । उन्हीं अधखुली आंखों से वह उस सम्पूर्ण चित्र को देखने लगता है । अपनी जन्मभूमि, चेतलाष्यामगंज ‘... यह वाराणसी ‘... उन्नीस सौ बयालीस । वह ‘...’

मां ने यही समझाया था : अपने रास्ते पर आकांक्षा के फूल मत बिखेरना, नहीं तो वे कांटे हो जायेंगे ! मनुष्य को हर चीज नहीं प्राप्त होती, सुबन्धु ! जिस कार्य के लिए तुम बनारस जा रहे हो — विद्या पढ़ने — वही करना । तुझे प्यास और भूख है — इसे कभी भड़कने मत देना । कुण्ठा तो कभी बनने ही न देना । नहीं तो वह तुम्हें सत्य के नाम पर बार-बार छलेगी ।

सुबन्धु अपने मुंह को ढंक लेता है । बड़ा अंधेरा छा जाता है । वही कलकत्ता शहर । लार्ड कार्नवालिस स्ट्रीट । वह हत्याकाण्ड । वह दुर्गन्धबाबा सब छिपकर देख रहा है । नादिया और ढाका की वह यात्रा । वह क्या है । क्या तलाश रहा है, पर उसे क्या बनना पड़ता है, क्या बोलना पड़ता है !

सुबन्धु आज अपनी उन अधखुली आंखों में सब कुछ बिलकुल साफ-साफ देख रहा है — वह नवद्वीप गया है हिरन को ढूँढने ।

सुबन्धु आंखें मूंद लेता है ।

लगता है उस मुंदा हुई आंख के सामने वही महाजननी उठ खड़ी हुई है । पूछती है — बोल न !

मां !

बस आगे वह कुछ नहीं बोल पाता । आसमान में कब से रूका हुआ वह काले बादल का टुकड़ा आज बहुत करीब झुक आया है । इतने करीब कि सुबन्धु उसे आज छू लेगा ।

यशोवर्मन ! मेरे राजकुमार दोस्त ! सच कहूं । तुम बुरा मत मानना ! तुमने मुझे मारा ! कहां सामंत राजा कहां किसान ! यह भूख तुम्हीं ने दी ! अभाव की वह चेतना मेरी, तुम्हारे संग न जायेगी !

तुम्हारा साथ अभिषप्त दोस्ती ! असमानता एक पुराना संस्कारहीन एक नया संस्कारमय सच्चा अच्छा ऋण था वह !

ठीक है

काले बादल का वह टुकड़ा आसमान से उड़ गया ।

सुबन्धु को कहीं लगा कि उसके ऊपर जल की एक बूंद गिरी है । सिर्फ एक बूंद ।

सुगन !

मां !

उसकी आंखों में अब भी थोड़ी-सी भीड़ है । बहुत थोड़े-से लोग रह गये हैं । सुबन्धु उनसे कहता है, 'सुनो सुनो प्रेम की विकृति आत्महिंसा है ।'

सुगन का माथा उस भीड़ में चमक रहा है ।

पतितराम ने वेटिंग रूम की बत्ती बुझा दी । बाहर दरवाजे पर वेटिंग रूम का चौकीदार ऊंघ रहा था । पतितराम उसके पास जाकर बोला — "अब इधर और कोई गाड़ी नहीं आयेगी क्या ?"

चौकीदार चौंक पड़ा, "मैं गरीब आदमी !"

पतितराम घबरा गया । चौकीदार जग पड़ा । हंसकर बोला, "मेरी आंख लग गयी थी । मुझे लगा, मेरे पास कोई चोर घुस आया है ।"

पतितराम अपने-आपसे कहता है, "हां, मैंने चोरी की है । पांच सौ रुपये वही सुबन्धु के हिरन को वापस देने के लिए सुगन बहू ने सुबन्धु को दिये थे । सुबन्धु झूठ बोला था । उसको कुछ नहीं देने थे हिरनमयी को । वे पांच सौ रुपये उसने अपने पास रख लिये थे । वही मार दिये थे पतितराम ने । वही थी उसकी पहली चोरी । दूसरी चोरी उसने की है यात्री नम्बर सात सौ तेरह की । और तीसरी चोरी की है बम्बई के उस गोखले की ।

चोरी के वे सारे रुपये पतितराम की कमर में बंधे हैं । वह चुपचाप चौकीदार का मुंह निहार रहा है । चौकीदार पूछता है, "तुम्हें कहां जाना है ? तुम्हारी गाड़ी कब आयेगी ?" पतितराम उत्तर देता है, "कहीं नहीं ।"

"वह दूसरा यात्री कहां जायेगा ?"

"पता नहीं ।"

"वह तुम्हारे साथ नहीं है क्या ?"

"है, पर हम सुबह होने का इन्तजार कर रहे हैं ।"

"सुबह कहां जाना है ?"

"वापस ।"

"कहां ?"

पतितराम एकटक चौकीदार का मुंह देख रहा है । चौकीदार बीड़ी पी रहा है । चौकीदार पूछता है, "तुम इस तरह मेरा मुंह क्या देख रहे हो ?"

"तुम्हारे कितने बाल-बच्चे हैं ?"

"छह बच्चे हैं, मां है, औरत है ।"

"खूब सुखी हो ?"

चौकीदार मुसकराता है, "इसको सोचने का कभी मौका ही न मिला ।"

पतितराम पूछता है, "या तुम्हें कभी भागने का मौका न मिला ?"

चौकीदार उत्तर देता है, "भागने से कुछ नहीं मिलता ! और कोई भागकर जायेगा भी कहां ?"

पतितराम चुप हो जाता है । प्लेटफार्म पर बड़ी शान्ति है । न जाने कहां-कहां के यात्री इधर-उधर सोये पड़े हैं । पतितराम प्लेटफार्म पर निरुद्देश्य टहलता है । हर सोया हुआ यात्री मानो अपनी चुप आवाज में उससे कहता है, "देखना भाई, मेरी चोरी न कर लेना !"

पतितराम हंसता है । उसकी कमर में बंधे हुए वे रुपये हंसते हैं । पतितराम को लगता है, वह आदमी नहीं, तलचट्टा है, जो रात की इस खामोशी से बाहर निकला है ।

तब उसे सुगन बहू की मर्मभेदी बात याद आती है । "इसे कहते हैं - जिन्दगी जीना । कोई घुटन नहीं । कभी ग्लानि को अपने पास न फटकने दिया ।"

सुगन बहू ने कलम उठाकर एक दिन पूछा, "बोल भाई पतितराम, बता अपनी जिन्दगी, मैं तुम पर एक कहानी लिखूंगी ।"

"मेरी जिन्दगी में क्या है, बहू ?"

"तू मुझसे छिपा रहा है, समझ ले यह बात ... तू फिर और किसी के सामने नहीं प्रकट कर पायेगा !"

"मैं इससे पहले वही रिक्शा चलाता था । कानपुर ... और उसके पहले इलाहाबाद में ।"

"और उसके पहले ?"

"उससे पहले मैं कुछ नहीं था ।"

"अजब है तू ... उससे पहले तू कुछ नहीं था ! यह कैसे हो सकता है, रे ?"

"इससे पहले मैं भागता फिरता था । हरदम सोचता था, मैं क्रान्तिकारी हूँ । मैं सब कुछ बदलकर छोड़ूंगा !"

"क्रान्तिकारी !"

यह कहकर सुगन बहू हंसी थीं । बहुत तेज हंसी । वही हंसी वह जैसे उस षिविर में स्वयं जलती हुई भी हंस रही थीं । पतितराम को वही हंसी उनकी सुनाई दे रही थी उस समय भी, जब उनका राख हुआ षव चिता पर चढ़ाया गया ।

सुबन्धु को लेकर आगरा की कोठी में एक दिन बड़ा बवण्डर उठा था । मालिक बिगड़े थे, "सुबन्धु को यहां अब नहीं रहना है । वह ठीक नहीं है ।"

सुगन बहू ने मालिक के मुख पर अपना हाथ रख दिया था । मालिक ने बहू का हाथ झटक दिया था । और बहुत खरी-खोटी सुननी पड़ी बहू को । फिर भी बहू कहती रहीं, "और जो कुछ भी कहना हो, कह डालो, पर याद रखना, मैं इतनी हल्की नहीं हूँ ।"

पतितराम को पीछे से वेटिंग रूम के चौकीदार ने झकझोर दिया, "झूठे कहीं के ! वेटिंग रूम में टी0 बी0 का मरीज ला छोड़ा है !"

"अरे !"

"अरे-फरे कुछ नहीं ! जल्दी से उसे बाहर निकाल ले जाओ ; वरना ... "

पतितराम भागकर कमरे में गया । देखा, बेंच पर उसी तरह सुबन्धु बेसुध पड़ा है । चौकीदार मुंह पर अंगोछा रखे हुए बोला, "देखो यह खून !"

पतितराम अंगोछे से खून पोंछने लगा ।

"नहीं, नहीं, इसे अभी बाहर निकालो !"

"सोचो भाई, इतनी रात को इसे कहां ले जाऊं ! दया करो, सुबह इसे लिए हुए निकल जाऊंगा ।"

"पर तूने सच्ची बात पहले क्यों नहीं बतायी ?"

पतितराम चौकीदार का मुंह देखता रहा । धीरे से निकालकर उसके हाथ में पांच रूपये का नोट थमाया । बोला, "सच्ची बात कौन बता सकता है !"

"यह कौन है तुम्हारा ?" चौकीदार ने पूछा ।

"साथी है ।"

“फिर इसे अस्पताल ले जाओ । टेलीफोन करो यहां से । एम्बुलेंस आयेगी सदर अस्पताल से । यहां क्या कर रहे हो बैठे ?”

“मैं कुछ नहीं कर रहा हूं । यह खुद यहां भागकर आ गया था, मैं तो इसे ढूंढते-ढूंढते यहां आया ।”

चौकीदार परेषानी में पड़ गया था, “यहां कोई मुसाफिर आ गया तो ? चार बजे की मेल आने वाली है । फिर मैं क्या करूंगा ? और तुम लोगों के पास कोई टिकट भी नहीं है ।”

वे दोनों बातें ही कर रहे थे कि, सुबन्धु ने एक लम्बी सांस ली, ऐसी सांस जिसमें कराहने जैसी आवाज होती है । वही दर्द-भरी सांस । फिर पतितराम को लगा, सुबन्धु ने उसी सुगन का नाम लिया है ।

पतितराम ने सुबन्धु के मुख पर झुककर पूछा, “क्या है ?”

“सुबन्धु कहां है ?”

“तुम्ही तो हो सुबन्धु !” पतितराम ने उत्तर दिया ।

सुबन्धु ने धीरे से सिर हिलाया, जैसे वह बार-बार पूछ रहा हो — “सुबन्धु कहां है ?”

सुबन्धु अधखुली आंखों से एकटक पतितराम को देख रहा है । पतितराम के लिए वह मर्मभेदी नजर असह्य हो रही है । वह उससे आंख नहीं मिला पाता । वह अपनी आंख दूसरी ओर कर लेता है । चौकीदार उसी बीच बोलता है, “देखो, सब पोंछ-पाछकर ठीक कर डालो ; नहीं तो अभी कोई मुसाफिर आ जायेगा तो जुल्म हो जायेगा ।”

पतितराम पानी से अंगोछा भिगो-भिगोकर फर्ष साफ करता है । बेंच पोंछता है । और उसे हर क्षण लगता है, कि सुबन्धु उसी अधखुली आंख से उसे ताक रहा है ।

चार बजते-बजते सच उस वेटिंग रूम में दो मुसाफिर आये । पति-पत्नी । पतितराम सुबन्धु के मुंह के सामने बिलकुल उसे घेरे-छिपाये हुए बैठा है ।

थोड़ी देर बाद नवागन्तुक पुरुष ने पूछा — “यह कोई मरीज है क्या ?”

पतितराम ने ठाठ से उत्तर दिया, “जी हां, तबीयत खराब है ।”

“क्या हुआ है ?”

“बस खराब है ।”

इतना-सा ही सच बोलकर पतितराम को बड़ा सुख मिला । ठीक चार बजे मेल आयी । दोनों मुसाफिर वहां से चले गये ।

बत्ती बुझाकर पतितराम फिर कमरे से बाहर निकल आया । उसी अंधेरे कमरे में सुबन्धु अपनी उन्हीं अधखुली आंखों से देख रहा है । अब उसकी आंखों में से वह सारी भीड़ छंटकर सामने चली जा रही है । चली जा रही है ।

उसी में उसकी वह पूर्वषती है ।

उसी में इसकी उत्तरषती । उसी में कहीं बहुत ऊंचे खड़ी है वह सुगन ... सुगन ... !

सुबन्धु अपनी उन्हीं दोनों आंखों को जोड़कर उन सबको प्रणाम करता है । और उसे लगता है, जैसे-जैसे वह भीड़, वह यात्रा उसकी आंखों से दूर हटती जा रही है, वह उसी दलदल भूमि में गड़ता जा रहा है, घंसता जा रहा है ।

16

यात्रा चल रही है ।

उस वृन्दावन से लोहवन । लोहवन से दाऊजी । और अब दाऊजी से गोकुल की ओर । गोकुल के रास्ते में एक पीपल के नीचे वही पतितराम खड़ा है । वहीं से वह यात्रा को इधर आते देख रहा है । यात्रा की जैजैकार इतनी दूर से उसे बांध रही है । यात्रियों के गीत, भजन और कीर्तन यहां तक गूंज रहा है । पताकाएं और निषान हवा में ऊंचे उठे हुए लहरा रहे हैं ।

पतितराम इतनी दूर से वह सब देख रहा है । अब इन यात्रियों में वह सुगन बहू नहीं है । न वह सुबन्धु है । दोनों की यात्राएं खत्म हो गयीं । पर पतितराम को ऐसा लगता है, जैसे वे दोनों इस यात्रा के आगे-आगे चल रहे हैं ।

सुगन बहू हंसकर सुबन्धु से जैसे कह रही है, 'तुमने जाना ?'

सुबन्धु उसके सामने माथा झुकाकर कहता है, 'हां, मैंने जाना !'

'अब भी कोई संषय है तुम्हारे भीतर ?'

'नहीं, कोई संषय नहीं' पर यात्रा तो खत्म हो गयी ।'

सुबन्धु मानो उस षून्य में कौंधकर कह रहा है । सुगन बहू उस कथन का अर्थ बन रही है, 'नहीं, यात्रा कहां खत्म होती है ? देखो, पीछे कितने-कितने लोग चल रहे हैं ।'

सुबन्धु के चेहरे पर पतितराम ने अब तक कभी न कोई हंसी देखी थी, न कभी कोई मुसकान । आज वह उस षून्य में देख रहा है, उस सुबन्धु के मुख पर एक अमित मुसकान ।

एक दिन पतितराम ने सुगन बहू से पूछा था, "बहू मां, क्यों इतने सारे लोग इस दुनिया में जन्म लेते हैं ? क्या मतलब है इसका ? जन्म ? फिर मरन' फिर जन्म, फिर मरन ।"

सुगन बहू ने हंसकर कहा था, "इस गूढ़ अर्थ को मैं क्या जानूं रे । मैं तो सिर्फ इतना जानती हूं — इस जीवन का इतना ही अर्थ नहीं है, जितना अभी तक हमें मालूम है । मनुष्य इसी तरह ढूंढता चलेगा, खोजता चलेगा, और निष्चय ही एक-न-एक दिन वह उस अर्थ को पा जायेगा — जिसके लिए मनुष्य मरता-जीता रहता रहा है ।"

यात्रा पतितराम की आंखों के सामने आ गयी है । आगे-आगे वही बालक चल रहा है । उसकी बंधी हथेली पर बांसुरी रखी है, और एक मोर पंख । नहीं-नहीं, भूल हो रही है । सुगन मां ने बताया था — हथेली पर चन्दन रखा हुआ है — उस पर राधा के चरणों का चिह्न खिंचा हुआ है । और उन चरणों पर एक मोर पंख और एक बांसुरी रखी हुई है ।

पतितराम यात्रा की उस महा भीड़ में समा जाता है । सबसे पहले उसे देखती है, वही हिरनमयी, वही हिरनमयी । जैसे मछली पानी चीरकर बढ़ती है, वह उसी तरह भीड़ को पार करती हुई पतितराम के पास आती है ।

छूटते ही वह पूछती है, "सुबन्धु कहां है ?"

पतितराम चुप है, जैसे वह अब जान गया है सारी मर्मकथा । वह हिरनमयी की ओर देखता है, तो उसे ऐसा लगता है जैसे वह कहीं उसी सुगन बहू को तो नहीं देख रहा है ।

सुबन्धु अकसर आगरा की कोठी से अनायास ही रूठकर इधर-उधर बह निकलता था । कभी चेतलाष्यामगंज, कभी फतेहपुर सीकरी, कभी मथुरा, कभी सिकरोल, कभी सिकन्दरा, कभी जमुना के उस पार । तब सुगन बहू उसी पतितराम को भेजती थीं उसे ढूँढने के लिए । और पतितराम जब अकेले लौटता था, तब इसी तरह बहू पूछती थीं, "सुबन्धु कहां है ?"

हिरनमयी ने दूसरे क्षण पतितराम का हाथ पकड़कर पूछा, "कहां है सुबन्धु ?"

पतितराम मूर्तिवत् बोला, "सुबन्धु अब नहीं है ।"

"क्या कहा ! सुबन्धु अब नहीं है ?"

"हां... !"

"क्या हुआ उसे ?"

"मुंह से रक्त... षायद पहले उन्हें कभी तपेदिक... ।"

हिरनमयी चुप हो गयी । जड़वत् चुप । पतितराम भी आगे कुछ न बोल सका । क्या बोले बेचारा ! वह तो सब जान-समझ रहा है । साधू रहा है न अपने जीवन के पूरे ग्यारह वर्ष, तीन महीने, दो रोज, सात घड़ी । वह भी वैरागी साधू ! सुबह आंख बन्द करके अयोध्या में धूर्ई के सामने बैठता था, पर देखता रहता था सब कुछ, एक-एक राई रत्ती ! आज भण्डारे में क्या-क्या बनने जा रहा है... कौन चीज कहां चुराकर रखी जा रही है । किसकी आंख कहां है - यह सब वह उसी समाधि से देखा करता था ।

वह पतितराम क्या बोले... क्या बताए ? वह सुन रहा है हिरनमयी का अन्तरूदन । आज वह अर्थ लगा रहा है : 'मरन रे तुहं मोर ष्याम समान'... दूर संगे तुहं बांषी बजावसि... ।' चैतन्य महाप्रभु से लेकर चण्डीदास, विद्यापति सब उसके सामने लहरा रहे हैं ।

पतितराम दायीं ओर घूमने लगा, तभी हिरनमयी ने उसे रोका, कुछ पूछने जा रही थी कि भीतर से बंधे आंसू के कगार सहसा टूट गये ।

पतितराम खिसककर दायीं ओर चला गया । सामने पड़े वही मालिक प्रीतमदास - एकदम उदास और मौन मुख । जैसे उन्हें कोई जिज्ञासा न हो । वह सब कुछ जानकर बैठे हों ।

पतितराम ने अपनी ही तरफ से बातचीत शुरू की, "मालिक... ! आपने अब तक कुछ खाया-पिया कि नहीं ?"

मालिक प्रीतमदास के पास जैसे कोई वाणी न हो ।

पतितराम बोला, "सुबन्धु भी अब नहीं रहा साहेब ।"

प्रीतमदास पर अब भी कोई प्रतिक्रिया नहीं ।

प्रीतमदास इस यात्रा में अपंग पैर से आये थे, अब वह पैर-हाथ सब तन्दुरुस्त हो गया है । और यात्रा उनकी चल रही है । यात्रा के बीच में ही इस तरह सुगन उन्हें छोड़ चली गयी । अब उनके पास कोई प्रश्न-उत्तर नहीं है ! जैसे सब कुछ वही सुगन अपने संग लिये हुए चली गयी है । अब बची है वही यात्रा - सुगन की वह अधूरी यात्रा और

प्रीतमदास की वह चलती हुई यात्रा । दोनों यात्राएं अब अकेले उन्हीं को पूरी करनी हैं । षक्ति वही सुगन है, जो हर क्षण पति की उन्हीं आरक्त आंखों में बैठी है । सुगन उन आंखों में बैठी हुई मानो कहती है : 'जो कुछ हुआ, उस सबका दायित्व मेरे ऊपर है। तुम कहते होगे, मैंने तुम्हें बताया क्यों नहीं ? ' विश्वास करो, वह बताया नहीं जा सकता, जो अनुभूत किया गया हो । तुम सोचते होगे, मृत्यु से मैंने अपने कलंक को छिपाया है । पर विश्वास करो, मैं कलकिनी नहीं थी ' कहीं से भी, किसी तरह से भी नहीं । मैं सिर्फ सुगन थी, जिसको तुमसे स्नेह और विश्वास प्राप्त था । यदि यही न होता, तो मैं हर्गिज नहीं मरती । यह कैसी विडम्बना है ।

प्रीतमदास ने अनायास पतितराम से पूछा, "सुबन्धु से तुम्हारी भेंट कहां हुई ?"

"मथुरा स्टेशन के वेटिंग रूम में ।"

"वह अपने घर नहीं जा सकता ?"

"नहीं ।"

"ऐसा ही होता है ' ' "

प्रीतमदास सहसा रूक गये । पतितराम मालिक का वह भभकता हुआ मुख देखता रह गया ।

यात्रा गोकुल की ओर बढ़ रही है । गोकुल से मथुरा ' ' ' यात्री सम्पूर्ण हो जायेगी। मथुरा की परिक्रमा करके ये हजारों यात्री फिर अपनी-अपनी निजी यात्रा पर चले जायेंगे । पर जिनके पास अपनी कोई निजी यात्रा न होगी, वह कहां जायेगा ? यात्रा का पाथेय जब नहीं होगा, तो यात्रा कैसे होगी ?

पतितराम अपने चारों ओर देख रहा है । कहां है वह जैजैवन्ती और प्यारा राहुल ! वह उस भीड़ में उन्हें तलाष रहा है । सहसा कहीं पीछे से आवाज आयी, "काकू ' ' ' !"

पतितराम पीछे मुड़ता है । राहुल उसकी ओर भागा आ रहा है, पर जैजैवन्ती उसका हाथ पकड़े खींच रही है । राहुल रो पड़ता है । वह उस सबको तुड़ाकर अपने काकू से मिल जाना चाहता है । जैजैवन्ती रो पड़ती है, "तुम फिर क्यों सामने आये ?"

"जी माना नहीं, राहुल की मां ! विश्वास करो ' ' ' ?"

"राहुल नादान है !"

"तभी तो ' ' ' मैं राहुल से भी ज्यादा नादान हूं ।"

राहुल ने बरबस आकर पतितराम का हाथ पकड़ लिया है । पतितराम राहुल को उठाकर अपने कंधे पर बिठा लेता है । राहुल मारे खुशी के खिलखिला रहा है ।

"काकू ' ' ' काकू ! तुम कहां चले गये थे ?"

"तुम्हारे लिए खिलोने लाने ।"

"कहां है मेरे खिलोने ?"

“आज आ जायेंगे ।” पतितराम के मुंह से सहज ही निकल गया । पर वह सोचने लगा : कहां हैं खिलौने ? राहुल को खिलौने देने होंगे । राहुल बोलता है, “मां ने मुझे खिलौना नहीं दिया । कभी नहीं दिया । सुनो काकू ।” मां कहती है, कहां से लाऊं !”

पतितराम को लगता है, जैसे उसके ऊपर आषाढ़ की मूसलाधार वर्षा हो रही हो । उसकी बंजर धरती भीग रही हो । पानी में डूबती जा रही हो !

“काकू !”

“हां, बेटे ! आज तुझे बहुत खिलौने मिलेंगे !”

“पर मां नहीं लेने देगी !”

पतितराम घूमकर जैजैवन्ती का मुख निहारता है । वह किसी और दिशा में निहार रही है । पतितराम पास जाकर कहता है, “मैं भइया को लिये हुए खिलौने लेने जा रहा हूँ। अभी आता हूँ ।”

“यहां कहां मिलेंगे खिलौने ?”

“मिलेंगे न, हम लाते हैं अभी ।”

पतितराम राहुल को कंधे पर लिये हुए उस यात्रा से बायीं ओर की दिशा में चला जाता है । आंख उटेरे हुए चारों ओर आकाश में देखता है । सहसा वह देखता है : जंगल के उस पार कोई तालचिरैया बोल रही है । वह जंगल को चीरकर उस पार जाता है । सच, एक छोटा-सा तालाब मिलता है । चारों ओर से सूखकर केवल अपने थोड़े-से अंक से जल बटोर हुए हैं । बेहद चिड़िया है इनमें । पतितराम जैसे युगों बाद उन तालपक्षियों को देखता है और एक-एक को पहचान रहा है । और राहुल से उनकी पहचान करवा रहा है, “यह देखो इसका नाम है परेवा, यह है चाहा, यह है तालकुकुरी, वह है सोनपताई, खंजन, टुपटुपियां, बगुला, पनडुब्बी, और वह है गगनचर्खी ।” पानी के ऊपर एक बिन्दु पर चर्खी की तरह उड़ रही है और पिकार देखते ही पानी में पंख तोड़कर फाट पड़ती है ।”

राहुल की प्रसन्नता का आर-पार नहीं है । वह उन पक्षियों की ओर दौड़ता है । पक्षी उड़ते हैं, फिर घूमकर वहीं बैठ जाते हैं । जैसे वे सब भी राहुल के संग खेल रहे हों ।

पतितराम ताल की चिकनी मिट्टी निकालकर उसे पैर से रोंद रहा है । और उसे युगों की बिसरी हुई वह बात याद आ रही है ।

वह इसी राहुल की ही तरह है । वह अपने काका के साथ इसी तरह ताल के किनारे जाता था । काका ताल से बरतन बनाने के लिए मिट्टी खोदते थे, वह इसी तरह ताल के किनारे चिड़ियों से खेलता था । मेंढकों और मछलियों से बातें करता था ।

रौंदकर तैयार की हुई मिट्टी से पतितराम अब खिलौने बना रहा है । आज सार्थक हुआ है, जैसे उसका जन्म ! वह कुम्हार है न ! षिल्पी । गढ़ने, बनाने वाला ! आज उसके हाथ में, वह ताल मिट्टी सोने की तरह लग रही है । वह मिट्टी को अपनी हथेली में दबाकर जब उसे रस्सी की तरह पूरता है, तब उसे लगता है, जैसे वह राहुल की वही नन्हीं-नन्हीं अंगुलियां छू रहा हो । मिट्टी पर जब वह हाथ रखता है, तो वह उसे जैजैवन्ती का वही सूना माथा लगता है ।

मिट्टी से एक अजब सुगन्ध आ रही है — जैसे यौवन की गन्ध । इस गन्ध से पतितराम का कोई परिचय नहीं है । पर वह गन्ध तो जानता है ।

वह बार-बार मिट्टी को सूंघता है । फिर उसके खिलौने बनाता है — हाथी, घोड़ा, ऊंट, बैल, साधू, चिड़िया, बैलगाड़ी, बहंगी लिए हुए एक मजदूर !

राहुल अब सामने आकर बैठ गया है । वह ताली पीट-पीटकर हंस रहा है । पतितराम खिलौनों के ढेर लगाता जा रहा है । अन्त में बनाता है, वह एक स्त्री ' ' ' स्त्री बनाकर जब वह उसकी आंख चीरने लगता है, तब वह कांप जाता है — सुगन बहू मां ! नहीं-नहीं ! उनका खिलौना नहीं बन सकता !

उस मिट्टी को वह मिट्टी में मिला देता है । फिर वह कान उठेरकर सुनने लगता है — यात्रा की जैजैकार, उसका तुमुल गान अब काफी दूर चला गया है । वह झटपट बची हुई माटी का आखिरी खिलौना बनाने लगता है । एक स्त्री, एक बालक ' ' ' और एक पुरुष ' ' ' तीनों एक ही माटी में ' ' ' एक ही खिलौने में तीन । राहुल खिलखिलाकर बोल उठता है, "मां, मैं और तुम काकू !"

ताल के किनारे असंख्य पक्षी तरह-तरह सुरताल में बोल रहे थे । पतितराम ने लकड़ी की खपाची के सहारे अपने अंगोछे का एक थाल बनाया । उसी थाल में रखे संभालकर सब खिलौने । फिर राहुल को संग लिये हुए वह यात्रा की ओर बढ़ता है ।

गोकुल के रास्ते में श्रृंगार वट के पास यात्रा कुछ देर के लिए रूक गयी है । पतितराम राहुल के साथ इसी बीच यात्रा में शामिल हो जाता है । श्रृंगार वट के मन्दिर की कहानी बड़ी मजेदार है । एक चरवाहे को कहीं राधाकृष्ण की युगल मूर्ति मिली । अपनी झोंपड़ी में मूर्ति रखकर वह जो कुछ रूखी-सूखी पाता था, वही भगवान को देता था । दूध-माखन के खाने वाले भगवान नीरस रोटी खाते-खाते थक गये । तब एक रात उन्होंने चरवाहे को स्वप्न दिखाया कि, "है रे सनातन ! अलौनी रोटी भोग धरा करते हो । इनमें थोड़ा-सा-नमक तो गेर लिया करो ।" चरवाहे ने जवाब दिया, "है प्रभो, मैं चरवाहा हूँ, आज आपने मुझसे लवण मांगा, कल आप वस्त्र, आभूषण और गोपिकाएं मांगोगे तो कहां से दे सकूंगा !" भगवान रूठ गये और वहीं एक वट वृक्ष में अन्तर्धान हो गये ।

यही है वह श्रृंगार वट । यात्रा उसी की परिक्रमा कर रही है ।

अंगोछे के थाल पर मिट्टी के खिलौने धूप में सूख रहे हैं । खपाची को बड़े जतन से पतितराम अपने हाथ से पकड़े हुए है । रमोली चौबाइन कहती है, "मुझ से तुम कोई काम नहीं लेना चाहते क्या ?"

पतितराम रमोली के प्रश्न-भरे मुख को देखता रह जाता है । फिर अपने हाथ के वे खिलौने रमोली को पकड़ा देता है, "इन्हें सूखने दो । ये खिलौने राहुल के हैं ।"

"और तुमने बनाये हैं !"

रमोली भरी आंखों से पतितराम को निहारकर रह जाती है ।

यात्रा गोकुल के रास्ते पर बढ़ रही है ।

डाकुओं के गिरोह से भागा हुआ वह अभागू पिछली रात को श्रीमद्गोस्वामी जी के चरणों पर जा गिरा था, पूछने लगा था, "इस यात्रा के बाद कहां जाऊंगा, महाराज ?"

"उसी भगवान की षरण में !"

अभागू को यह बात समझ न आयी । भगवान तो होगा, पर उसकी षरण कहां ? वह जगह कहां है, जहां वह खड़ा होकर कहीं जाय ! मुंगेर के देवीथानपुर के अखाड़े के जितने वैरागी साधू आये हैं, वे सब अभागू से कहते हैं, "साधू हो जा ।" पर एक दिन जो पतितराम और वैरागियों से झड़प हुई थी, और उसमें जो पतितराम ने सुनायी थी, वह अभागू के दिल में पत्थर की लीक जैसी बन गयी है । पतितराम ने कहा था, "मन में सारी वासनाएं लिए हुए हारकर साधू होने से अच्छा है, कहीं सचमुच आत्महत्या कर लेना । यह भीख मांगकर तिल-तिल करके आत्महत्या करने से क्या फायदा ?"

वैरागी साधुओं के महाराज ने पतितराम को डांटा था, "तुझे क्या पता धर्म, ईश्वर और गुरु किसे कहते हैं ।"

पतितराम जलती हुई वाणी से बोला था, "धर्म, ईश्वर और गुरु — इन्हें मनुष्य अपने-आपको सौंपकर अपने से छुट्टी पा जाता है । जब संघर्ष नहीं, तो मनुष्य को मिलेगा क्या ? तब वह रचेगा क्या ? तब वह सिर्फ भीग मांगेगा ।"

अभागू को पतितराम की बात जंचती है, पर इस जीवन में फिर से लौटते हुए उसे न जाने क्यों भय लगता है ।

पतितराम को भी उस दिन भय लगा था, जब वह कमरे में कफन लपेटे हुए चुपके से समाज में घुसा था । तब उसे लगता था, जैसे हर आदमी उसे पहचान रहा है और उसका पीछा कर रहा है । "पकड़ लो, यही है वह पतितराम, पकड़ लो !"

पर धीरे-धीरे इसी समाज ने उसे षरण दी । उसे अभय बनाया । इसी समाज ने उसे जीवन का मतलब समझाया । इसी में उसे वह सुगन बहू मिली । तब पतितराम ने सोचा था, बल्कि अपने जीवन का उद्देश्य बनाया ताकि वह सुगन बहू की सेवा में अपनी सारी जिन्दगी काट देगा । पर सुगन बहू को षायद यह मंजूर नहीं था । उन्होंने एक दिन कहा था, "एक यात्रा से दूसरी यात्रा शुरू होती है । यात्रा का कोई अन्त नहीं ।"

किसी ने अचानक पुकारा है पतितराम को । ओह, वही हिरनमयी है । पतितराम आज जैसे भली-भांति उसे देख रहा है — गेंहुआं रंग है, मुखश्री अनुपम । काले बादलों जैसी सघन वेणी को ढीली-ढीली गूँथकर उसी तरह लापरवाही से छोड़ दिया है । मांग में इतना चटक सिन्दूर । पर उन गहरी आंखों में आज इतना उदास राग !

हिरन ने पूछा, "तुम सुबन्धु के साथ थे ?"

पतितराम बोला, "साथ और बेसाथ क्या, वे कुछ बोले नहीं । आंख खुलती थी, फिर बन्द हो जाती थी । पर उन आंखों में कहीं भी आंसू नहीं थे ।"

"आंसू नहीं थे !" हिरन ने तड़पकर पूछा ।

पतितराम बोला, "हां, आंसू अन्त तक नहीं थे । बाद में आंख अधखुली ही रह गयी थी ।"

हिरन को लगा, सुबन्धु उसी आंख से उसे अब तक निहार रहा है । संषयहीन आंख ... हिरन ने अपने दोनों हाथ बांधकर उसे माथे से लगाया — जैसे वह किसी अदृश्य को प्रणाम कर रही हो ।

यात्रा चल रही है । गोकुल अब समीप है । यात्रा के आगे कोई दूरगामी कह रहा है :

ओज : सहोवलयुतं मुख्यतत्त्वं गदादघत्

अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ।

— इन्द्रियों की चतुरता, मन का उत्साह और शरीर के बल सहित प्राण ही विराट पुरुष की गदा है और जल का तत्त्व सुदर्शन चक्र है ।

हिरनमयी इस मन्त्रगान को सुनकर सोचती है, इन्द्रियों की चतुरता किसमें थी ? न उसमें, न सुबन्धु में ।

सुबन्धु कभी नहीं भुलाया जा सकता ।

वह सदा उसी के एक अभाव की याद दिलायेगा । और उसकी स्मृति बार—बार यह कहेगी कि अभाव को जन्म देना ही मृत्यु है । आत्मदंष है वि००० विकृति है ।

गोकुल पास आ गया । यात्रा का अन्तिम पड़ाव । पर कल भी यह यात्रा चलेगी, अपने सम पर पहुंचने के लिए — मथुरा से मथुरा ।

रमोली चौबाइन के हाथ में राहुल के खिलौने सूख चुके हैं । रमोली के हाथ उस तरह उठे—उठे जरा भी थके । उसे लगा, जैसे वह स्वयं उन खिलौनों के साथ फूल जैसी हल्की हो गयी है । और उसके चारों ओर कुछ महक रहा है ।

रात को फिर वही सुरताल बजा वि००० वही नृत्य वि००० वही पखावज, वही घुंघरू, जो कितने—कितने वर्षों से बजा चला आ रहा है :

तततता थेई तततता थेई

तततत थेई वि०००

तिकट—तिकट धिलांग धिकतक वि०००

और रात के पिछले पहर में सब कुछ थककर सो गया । वह चौरासी—कोस की ब्रज—यात्रा, यात्रा के अन्तर्मन में चलती हुई वे असंख्य—असंख्य यात्राएं वि००० उपयात्राएं । छब्बीस दिन का यह महादिन, महारात्रि, यह सब कुछ सो गया है । नृत्य, गायन, वादन, मूर्च्छा, तन्मयता — सब सो रहे हैं । और सब पर वही शरद की चांदनी फैली हुई है ।

जैजैवन्ती और राहुल शिविर के सामने चटाई पर बेखबर सो गए हैं । राहुल के सिरहाने वे सारे खिलौने सजाकर रखे हुए हैं — वे सारे पक्षी, खेल, खिलौने । पतितराम दूर से मां और पुत्र को निहार रहा है । कितनी सुन्दर है मां ! कितना माधुर्य है उसके विधवा मुख पर ! कितना बड़ा जीवन सो रहा है उसके आंचल में !

पतितराम ने कितने—कितने स्वप्न देखे हैं इस यात्रा में ! और वह यात्रा आज इस पिछले पहर में सो रही है । वह धीरे से जैजैवन्ती के पास जाता है । उसके सुख पर झुककर जैसे वह कुछ छू लेना चाहता है । पर वह छू नहीं पाता । उसके हाथ कांपते हैं । उसके होंठ दुखने लगते हैं । वह एकटक मां और शिशु को निहारता है ।

राहुल का वह बोल, “काकू वि००० काकू !” कान में धुल रहा है । पतितराम कमर से वह सारा चोरी किया हुआ धन बड़े जतन से अंगोछे में लपेटकर उसी राहुल के सिर के नीचे रख देता है । फिर ताकता है वि००० निहारता है ।

और वहां से चलने लगता है ।

चार कदम बढ़कर वह फिर पीछे देखता है, वही रमोली है, जो उसके पीछे—पीछे आ रही है ।

सुबह यह यात्रा फिर चलेगी । चलती रहेगी । वि०००

